स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

मेरे प्राणाधार

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

मेरे प्राणाधार



WORLD YOGA CONVENTION 2013
GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA
23rd–27th October 2013

मेरे प्राणाधार

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा *प्रथम संस्करण 2013*

ISBN: 978-93-81620-57-1

प्रकाशक एवं वितरक–योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक–थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



समर्पण

उन्हीं मेरे प्राणाधार को
जिन्होंने मेरा सर्वस्व अधिगृहीत कर लिया है;
उन्हीं मेरे लीलाधारी को
जिन्होंने अपनी लीलाओं के प्रकटीकरण के लिये मुझे निमित्त बनाया;
और उन्हीं मेरे स्वामी निरंजनानन्द जी को
जो मेरे लिये परमेश्वर का पर्याय बन चुके हैं;
यह कहते हुए
'तेरा तुझको (सम) अर्पण'

– आत्माभिषेक

भूमिका

मेरे प्राणाधार कौन? क्यों और कैसे? इन प्रश्नों को जानने के लिये आपको सर्वप्रथम 1996 की ओर ले जाना चाहूँगा।

31 मार्च को भारत सरकार के कार्यभार से मुक्त हुआ और 19 अप्रैल 1994 को चैत्र नवरात्रि अष्टमी के शुभ दिन पूर्व निर्धारित व्यवस्था के अनुसार मुझे स्वामी निरंजनानन्द जी ने कर्म संन्यास में दीक्षित किया, नाम दिया 'आत्माभिषेक'। सेवा के रूप में योग प्रशिक्षक का कार्य मिला और मैं सपरिवार अजमेर, राजस्थान पहुँच गया।

1996 चैत्र नवरात्रि के अवसर पर आयोजित एक योग शिविर के संचालन के लिये मेरे अनुरोध पर गंगादर्शन, मुंगेर से स्वामी नित्यचैतन्य और जिज्ञासु प्रशांतमूर्ति आये। शिविर बहुत अच्छी तरह संपन्न हुआ। शिविर के मध्य इन दोनों ने मुझे बताया कि 3 से 6 अप्रैल तक सम्बलपुर, उड़ीसा में स्वामी निरंजनानन्द की उपस्थिति में एक योग सम्मेलन आयोजित होने वाला है। मैंने तुरंत आरक्षण कराया और बिना वापसी का आरक्षण कराये 3 अप्रैल को सम्बलपुर पहुँच गया।

सम्मेलन भव्य रहा। मैंने स्वामीजी की अनुमति लेकर जमालपुर तक का टिकट ले लिया। ट्रेन में स्वामीजी के साथ स्वामी स्वयंभूनाथ एक कक्ष में थे और मैं बाल योग मित्र मण्डल के कुछ बच्चों के साथ दूसरे कक्ष में था। स्वामी स्वयंभूनाथ हम लोगों के कक्ष में आये और कहा कि सभी को स्वामीजी नाश्ते के लिये बुला रहे हैं। हम सामान लेकर उनके कक्ष पहुँच गये। स्वामीजी को प्रणाम निवेदित कर बैठ गये। स्वामीजी ने स्वयं अपने कर कमलों से परोस-परोस कर हम सब को नाश्ता कराया, कुछ वैसे ही जैसे कोई ममतामयी माँ अपने बच्चों को खिलाती है।

स्वामीजी के हाथों से परोसा नाश्ता खाने का यह मेरे जीवन का प्रथम अवसर था। वह शुभ तिथि थी 7 अप्रैल 1996 और समय था प्रात:काल। नाश्ता समाप्त हुआ, घड़ी देखी, जमालपुर पहुँचने में अभी देर थी। पता नहीं क्यों, मैंने स्वामीजी से अचानक पूछ लिया, 'आप अजमेर कब आ रहे हैं?' स्वामीजी ने कहा, 'अभी तो ऐसा कार्यक्रम नहीं हैं। क्यों?' मैंने बहुत ही सहज भाव से उत्तर दिया, मेरे पास कुछ माह का ही समय बचा है। यदि इस बीच आप आ जाते तो बहुत प्रसन्नता होती। मेरे जाने के बाद आप आयें या न आयें; मुझे क्या अन्तर पड़ेगा? स्वामीजी कुछ आश्चर्य में आकर पूछते हैं, 'आप कहाँ जा रहे हैं?' मेरा उत्तर सपाट था – मैं अपनी मर्जी से कहीं नहीं जा रहा हूँ। लेकिन यदि विधाता चाहे तो भला कोई क्या कर सकता है? जाना ही पड़ेगा।

मेरे उक्त कथन के पीछे धनबाद में रह रहे एक ज्योतिषी द्वारा 60 वर्ष के आगे प्रश्न चिह्न लगाये जाने वाली बात थी। अगले 2 अक्टूबर को मैं 60 वर्ष पूरे करने जा रहा था और ज्योतिषी के अनुसार आगे असमंजस है। मैंने प्रत्यक्षत: कहा – 'मेरे पास केवल पाँच-छ: महीने का समय है। इसीलिये ऐसा निवेदन कर रहा था।' मैं यह सब बड़े ही सहज भाव से कहे जा रहा था, मानो मरना किसी नाटक की तरह एक खेल है और मैं मरने के लिए उत्सुक हूँ। सुन कर स्वामीजी ने कहा, 'आप ऐसे कैसे जा सकते हैं?' मैंने उत्तर दिया, 'मैंने आपसे कहा तो कि मैं अपनी मर्जी से कहीं नहीं जा रहा हूँ। लेकिन विधाता के आगे किसकी चली है? जाना ही होगा।' स्वामीजी फिर बोले, 'नहीं-नहीं, 'आपको अभी गुरु सेवा करते हुए केवल दो वर्ष हुए हैं, जबकि शास्त्रों में गुरु सेवा का 12 वर्ष का विधान है। आप 12 वर्ष पूरे किये बिना कहीं नहीं जा सकते।'

उस समय के कथन की उनकी भाव-भंगिमा मुझे आज तक याद है। अपने दायें हाथ की तर्जनी को सीधा तान कर, चेहरे पर दृढ़ता का भाव लाते हुए पूरी गंभीरता के साथ उनके श्रीमुख से उक्त शब्द निकले थे। मेरे मन में विचार आया– यह क्या? स्वामीजी मुझ जैसे एक साधारण कोटि के व्यक्ति के लिए ईश्वर के विधान में हस्तक्षेप करने पर तुले हैं? फिर अपने को सहज बना कर मैंने कहा, 'आपने यह एक्सटेंशन दिया है; मैं विनम्रता से इसे स्वीकार करता हूँ।'

यह बातचीत यहीं रुक गई। कुछ समय बाद मैंने इस पूरी घटना पर चिन्तन किया तो आश्चर्य पर आश्चर्य करता रहा। पहला आश्चर्य मुझे

हुआ कि मैंने एक ज्योतिषी की कही बात को इतना तूल क्यों दिया कि सीधे स्वामीजी से ही कह बैठा। दूसरा आश्चर्य कि यदि ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर गंभीर था, तो मुझे सन्निकट मृत्यु का थोड़ा भी भान क्यों नहीं हुआ। मैं अपने मरने के बारे में ऐसे सूचना दे रहा था मानो किसी नाटक की चर्चा कर रहा था। तीसरा आश्चर्य कि स्वामी निरंजनानन्द जी जैसे परमहंस ज्ञानी सन्त ने मेरी इस बचकानी बात को इतनी गंभीरता से क्यों लिया। वे क्यों हटात् ईश्वर के विधान में हस्तक्षेप करने के लिये उद्धत हो गये? यह संसार तो ऐसे ही चलता रहता है। फिर मेरे जाने को लेकर वे इतने गंभीर क्यों हो गये? ये प्रश्न आज भी पहेली बने हुए हैं।

अब ज्योतिषी की कही बात को सही सिद्ध करने के लिए जो कुछ हुआ उसकी कहानी नीचे दे रहा हूँ। गुरु पूर्णिमा के अवसर पर मुंगेर आया तो स्वामीजी ने मुझे निर्देश दिया कि 1 अक्टूबर 1996 को चतुर्मासिक सत्र में पाँच सप्ताह तक आसन-प्राणायाम की कक्षा का संचालन करने के लिए मुंगेर पहुँच जाऊँ। अजमेर लौटकर मैंने इसी के अनुसार अपना आरक्षण करा लिया।

सितम्बर के तीसरे सप्ताह में मैं अचानक बीमार पड़ा। बीमारी थी शक्तिहीनता की। तीन दिन बीते। डॉक्टर आये, कुछ दवाई दे गये। किन्तु मेरी बीमारी में कोई सुधार नहीं हुआ, बल्कि हालत बिगड़ती चली गई। छठे दिन मैंने प्रत्यक्षत: मृत्यु की आहट सुनी। डॉक्टर फिर आये, दवाई बदल कर दी। किन्तु लगता है उस दिन मैं डॉक्टर और दवाई की पहुँच के बाहर जा चुका था। मैं जिस स्थिति में पहुँच गया था, उसका एक ही विकल्प शेष था, मृत्यु का आलिंगन। उसी समय अचानक मैंने एक अदृश्य हाथ के स्पर्श का अनुभव किया। मुझे लगा कि किसी ने मुझे गहरे गड्ढे से निकाल कर बाहर ला खड़ा किया है और अगले ही क्षण से मेरी हालत सुधरने लगी। मैं अगले कुछ ही दिनों में बीमारी के लक्षणों से पूरी तरह मुक्त हो गया।

इस पूरे घटनाक्रम पर चिन्तन करने पर यही निष्कर्ष निकाल पाया हूँ कि आयु के 60 वर्ष पूरे करने के पहले मेरा जाना तय था, इसीलिए मैं सितम्बर 1996 में गंभीर रूप से बीमार हुआ था।

चिन्तन के फलस्वरूप एक और बात समझ में आयी कि 7 अप्रैल को स्वामीजी से हुई बातों का मेरी संभावित मृत्यु से सीधा सम्बन्ध था। स्वामीजी को पता चल गया होगा कि मैं शीघ्र ही प्रस्थान करने वाला हूँ, इसीलिये

उन्होंने उन परिस्थितियों का निर्माण किया, जो घटित हुईं। वे मुझे क्यों नहीं जाने देना चाहते, यह तो वे ही जाने। किन्तु उनका मुझ जैसे एक अति साधारण, अति सामान्य शिष्य में इतनी रुचि लेना घोर आश्चर्यजनक तो है ही। मुझे लगता है उन्होंने ही मुझे वह सब कहने के लिये प्रेरित किया होगा जो मैंने उनसे कहा। और फिर उन्हें जो करना या कहना था, कहा और दस वर्ष का अतिरिक्त जीवन मुझे दे डाला। यह एक तरह से विधाता के विधान में उनका हस्तक्षेप हुआ। इतना बड़ा कदम आखिर उन्होंने क्यों उठाया? उत्तर स्वामीजी ही जानते होंगे।

अब एक और प्रश्न मन में उठता है कि स्वामी निरंजनानंद जी आखिर हैं कौन? किसके अवतार हैं कि विधाता के विधान को भी बदल सकने की क्षमता रखते हैं? मनुष्य तो निश्चित रूप से वे नहीं हैं। उनके बारे में जितना सोचता हूँ, उतना उलझता जाता हूँ। उनकी थाह पाना मेरे लिये तो संभव नहीं है।

सन् 2005 में स्वामीजी के सान्निध्य में भुवनेश्वर में गुरु पूर्णिमा मनायी गई थी। मैं एक माह पूर्व स्वामीजी के निर्देश पर भुवनेश्वर पहुँचा था। एक रात्रि स्वामीजी सभी संन्यासियों से बातचीत कर रहे थे। मैंने समय पाकर उनसे कहा, 'स्वामीजी! मेरा गुरु सेवा का बारहवाँ वर्ष आरंभ हो गया है।' सुनते ही बिना पलक झपकाये उनके श्रीमुख से शब्द निकले, 'आपको दूसरा एक्सटेंशन मिल जायेगा।' मैं अवाक् रह गया उनके इस कथन को सुनकर। उस दिन मुझे पूर्णत: विश्वास हो गया कि 7 अप्रैल 1996 को उन्होंने जो कहा था, वह पूरी तरह सोच-समझ कर ही कहा था।

इस कहानी में एक और मोड़ आया चैत्र नवरात्रि-अष्टमी 2006 की शाम को, अर्थात् मेरी गुरु सेवा की 12 वर्ष की कालावधि पूरी होने पर। स्वामीजी के श्रीमुख से उस दिन उच्चारित शब्द पूरी तरह कल्पनातीत थे। घटना कुछ इस प्रकार हुई –

मैं उस दिन रिखिया में था। स्वामीजी की व्यस्तता के कारण मैं कोशिश करके भी उनसे नहीं मिल सका। दोपहर को मैंने स्वामीजी के नाम एक छोटा-सा पत्र लिखा, जिसमें मैंने गुरु-सेवा के 12 वर्ष पूरे होने के बारे में लिखा और अनुरोध किया कि आज मैं उनकी उपस्थिति में श्री स्वामीजी के दर्शन करना चाहता हूँ। शाम तक स्वामीजी के निर्देश की प्रतीक्षा की। कोई संदेश नहीं आया। शाम को यज्ञशाला में हवन हुआ और फिर भक्तगणों का स्वामीजी के दर्शन करते हुए प्रस्थान का सिलसिला आरंभ हुआ।

स्वामीजी और स्वामी सत्संगी जी यज्ञमंडप के पूर्व की ओर बैठे थे। भक्तगण एक पंक्ति में उनके सामने से, उन्हें प्रणाम करते हुए प्रस्थान कर रहे थे। मैंने सोचा स्वामीजी से मिलने का यही अवसर है। मैं पंक्ति में न लगकर सामने से स्वामीजी की ओर बढ़ा। पास पहुँचने पर मेरी आँखें स्वामीजी की आँखों से मिलीं। मुझे अचानक लगा कि स्वामीजी मुझे बुला रहे हैं। मैं सीधे पंक्ति के बीच में घुसा, स्वामीजी के श्रीचरणों से लिपट गया और उन्हें कुछ देर चूमता रहा। क्या आनंद के क्षण थे! आँसू अविरल बह रहे थे। मुझे ऐसा आभास हो रहा था मानो मेरा खोया हुआ खजाना मुझे मिल गया है और मैं उस खजाने से, उनके श्री चरणों से कुछ समय तक इस तरह लिपटा रहा कि पूरी तरह भूल ही गया मैं कहाँ हूँ और क्या कर रहा हूँ।

इतने में मैंने स्वामीजी के हाथ का कोमल स्पर्श अनुभव किया, मैं कुछ सचेत हुआ और मैंने उनके शब्द सुने, 'उठिये! आपके लिए आज विशेष प्रसाद है।' मैं उठा तो अवश्य, किन्तु उनके घुटनों पर दोनों हथेलियाँ रख कर बैठ गया। मुझे याद आ रहा है कि मैं उस समय उनके पैरों पर अपने को पूरी तरह टिका कर ही बैठा था। वे मेरे गुरु हैं, मेरे पूज्य हैं, उस समय मैं यह भूल गया था। मेरा कृत्य उस समय कुछ वैसा था जैसे कि कोई अबोध बालक, खेलते-खेलते थककर, अपनी माँ के पैरों में लिपट जाता है और अनिर्वचनीय विश्राम पा लेता है। मैंने देखा स्वामीजी की बायीं हथेली में कुछ फूल रखे थे। उन्होंने एक फूल मेरी हथेली पर रखते हुए कहा,'यह श्री स्वामीजी का प्रसाद है आपके लिये।' फिर दूसरा फूल रखते हुए कहा, 'यह मेरी ओर से आपके लिये।' फिर तीसरा फूल हथेली पर रखते हुए कहा, 'यह स्वामी सत्संगी जी का प्रसाद है। आपको हम तीनों का आशीर्वाद प्राप्त है।' फिर कुछ क्षण रुककर कहते हैं, 'आपको ऐसे एक्सटेंशन मिलते रहेंगे।' मैं क्या कहता भला?

मेरे भगवान, मेरे स्वामीजी मुझ पर कितने कृपालु हैं। मेरी आँखों से बड़े वेग से आँसू निकलने लगे और मैं उनके चरणों में फिर कुछ देर लिपटा रहा। कुछ क्षण बाद किसी तरह उठ कर बैठा और ये शब्द मेरे मुँह से निकले, 'मेरा मुझ पर कोई बस नहीं है। आप जब तक चाहेंगे, जैसे चाहेंगे, रहूँगा।'

न चाहते हुए भी उठा, और आज्ञा लेकर निवास की ओर चल दिया। मेरे पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। मैं क्या भाग्य लेकर पैदा हुआ हूँ! मेरे भगवान सदृश स्वामीजी मुझ पर कितनी कृपा बरसा रहे हैं! पता नहीं स्वामीजी कब तक यूँ ही यमदूतों को खाली हाथ निराश लौटाते रहेंगे।

अब स्वामीजी को अपना प्राणाधार न कहूँ तो क्या कहूँ? इस शरीर में जो प्राण संचरित हो रहे हैं, वे स्वामीजी के प्राणों या महाप्राणों का ही तो अंश हैं। मैं तो अपना जीवन जी चुका था। अब जी रहा हूँ तो स्वामीजी के संकल्प के ही कारण। इस शरीर में उनके प्राण संचरित होने का ही तो यह परिणाम है कि 1996 के बाद आज तक एक दिन के लिए भी मैं अस्वस्थ हो बिस्तर पर नहीं लेटा हूँ। 76 वर्ष का हूँ, लेकिन शरीर में इतनी चुस्ती-फुर्ती है, ऊर्जा का स्तर इतना बढ़ा हुआ है कि मैं स्वयं अपने को आश्चर्य से देखता रहता हूँ। मन है कि आनंद में डूबा रहता है। इस चुस्ती-फुर्ती और आनंद का स्रोत स्वामीजी की करुणा और कृपा ही तो है। अन्यथा मुझ जैसे साधारण जीव की क्या बिसात? इड़ा और पिंगला अक्सर समान गति से प्रवाहित होती रहती हैं। यह स्वामीजी की प्रत्यक्ष कृपा नहीं तो और क्या है!

मुझे ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि स्वामीजी ने मेरे कर्मों का क्षय कर दिया है, जो इस जीवन में भोग्य थे और इसी शरीर में मेरे अगले जन्म को ला खड़ा किया है। यदि स्वामीजी का प्रत्यक्ष हस्तक्षेप न हुआ होता तो मेरा जीवन 1996 में समाप्त हो ही गया था।

इसीलिए 'मेरे प्राणाधार हैं' स्वामी सत्यानंद सरस्वती के मानस पुत्र, परमहंस, परिव्राजकाचार्य, अवधूत सिद्ध योगी और उच्च आध्यात्मिक संपदा से ओत-प्रोत एक अति सरल, सहज मानवीय व्यक्तित्व के धनी, बालयोगी, अवतारी पुरुष, स्वामी निरंजनानंद सरस्वती।



मैं कभी-कभी चिन्तन करता हूँ एक के बाद एक घटित इन घटनाओं से आखिर क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है? मेरे इस भौतिक शरीर में जो प्राण संचरित हो रहे हैं, उनका आधार कोई और भी हो सकता है भला! इसीलिये मैं उनके लिए सबसे उपयुक्त संबोधन पाता हूँ, 'मेरे प्राणाधार'। और उनके इन प्राणों ने मेरे संपूर्ण अस्तित्व को ही अपने में

समाहित कर लिया है। वे जब तक चाहेंगे मुझे जीना होगा, मेरे पास कोई विकल्प है ही नहीं। इतना ही नहीं, उन्होंने विधाता को कह ही दिया होगा कि आत्माभिषेक के बारे में सर्वाधिकार उन्हीं के पास रहेंगे। तभी तो 2006 में वे कह बैठते हैं – 'आपको ऐसे एक्सटेंशन मिलते रहेंगे।' कितनी विचित्र उद्घोषणा है यह? ऐसी घोषणा भी भला कोई करता है, कर सकता है!

अन्त में यही कहना चाहूँगा कि मैंने पिछले जन्मों में न जाने कितने अच्छे कर्म किये होंगे, जिससे निर्मित प्रारब्ध के फलस्वरूप मुझे स्वामीजी की अगाध कृपा का पात्र बनने का सौभाग्य मिला है। आगे के पृष्ठों में स्वामीजी द्वारा मेरे साथ की गई अनेक सहज लीलाओं का वर्णन है। ये लीलायें लगातार होती जा रही हैं, आज तक जारी हैं। मैं उनकी कृपा के सागर में, आनंद के हिलोरों में, तैरता, उतराता, डूबता जा रहा हूँ। मैं उन्हीं में समाहित होता जा रहा हूँ। इसकी अन्तिम परिणति क्या होगी, न तो मुझे इसकी कोई जानकारी है और न मैं इसे जानने को उत्सुक हूँ। 'जब सौंप दिया है जीवन का सब भार तुम्हारे चरणों में, तब मैं क्यों सोचूँ?' लेकिन यहाँ तो बात उससे भी आगे चली गई है। उन्होंने ही आगे बढ़कर मुझे अपने में समाहित कर लिया है। मैं अब अस्तित्वहीन हो गया हूँ। मुझमें उनकी इच्छा के इतर सोचने का भी सामर्थ्य नहीं बचा है। मेरे जीवन में वह ही हो, जो वे चाहते हैं। '*ईश्वरेच्छा बलीयसी*', और वही हो भी रहा है।

एक बात यहाँ और लिख दूँ कि इन संस्मरणों में आपको केवल स्वामीजी की लीलाओं का वर्णन और मेरे भावों की गहराइयाँ ही दिखेंगी। ज्ञान मेरा क्षेत्र नहीं है। ज्ञानियों की बातों में मेरी रुचि नहीं है। किन्तु जब भी कोई भाव हृदय को छू जाता है, आँखें अनायास नम हो जाती हैं। आँसू बह निकलते हैं। देखने वाले आश्चर्य से मुझे देखते हैं। मेरी पोल खुल जाती है। अपने को छुपा भी नहीं पाता हूँ। हृदय छिपाना नहीं जानता।

प्रेम की प्रतिमूर्ति मीराबाई की यह पंक्ति 'अब तो बेल फैल गई, जाने सब कोई', मुझ पर, मेरी दशा पर पूर्णतः लागू होने लगती है। वैसे थोड़ा अंतर है – मीरा ने स्वयं कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को उजागर किया था और यहाँ तो मेरे कृष्ण ही डंका बजा-बजा कर सबको यह कहानी बताये जा रहे हैं।

अपने लीलाधर की इन लीलाओं को पढ़कर आपको उनके व्यक्तित्व के इस अनूठे आयाम का एक परिचय तो अवश्य मिलेगा, ऐसा मेरा मनोभाव है।

मेरे प्राणाधार



अपने प्राणाधार का प्रथम दर्शन

नवम्बर 1978 में धनबाद में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन में श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती के चिरप्रतीक्षित दर्शन हुए और उन्हें गुरु रूप में प्राप्त कर मैं धन्य हुआ।

उसी सम्मेलन में एक शाम श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन के जीवन के आरंभ से जुड़ी कुछ घटनाओं के बारे में बताया, जो 'एक विलक्षण बालक की अनूठी कहानी' शीर्षक से लेख के रूप में योगविद्या पत्रिका में छपा। श्री स्वामीजी ने उनकी कहानी बताने के बाद कहा, 'वह विदेश से कल सम्मेलन में भाग लेने आ रहे हैं।' अगले दिन स्वामी निरंजन, जो उस समय 19 वर्ष से कम अवस्था के एक किशोर युवक थे, आये। सभी के साथ मैंने भी दर्शन किये। किन्तु पता नहीं क्यों मुझे उनके प्रति कोई विशेष आकर्षण नहीं हुआ। श्री स्वामीजी के प्रथम दर्शन पाकर मैं अधिक ही अभिभूत हो गया था, इसलिये स्वामी निरंजन की ओर आकृष्ट नहीं हो पाया।

अक्टूबर 1983 में मैंने गंगा दर्शन, मुंगेर में आयोजित 'क्रियायोग' सत्र में भाग लिया। पुन: स्वामी निरंजन के दर्शन हुए। वे उस समय बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष बन चुके थे।

जनवरी 1985 में स्वामी निरंजन धनबाद आश्रम आए। एक दोपहर मेरे अनुरोध पर उन्होंने मेरे निवास पर भोजन पाकर हमें कृतार्थ किया। फिर अनायास मुझे उनके साथ कार में मुंगेर जाने का अवसर हाथ लग गया। उनसे कुछ जान-पहचान बढ़ी। किन्तु विशेष नहीं। मेरे समक्ष तो सदैव श्री स्वामीजी थे।

1988 में गंगा दर्शन में श्री स्वामीजी के सान्निध्य में मनायी गई अन्तिम गुरु पूर्णिमा हमेशा याद रहेगी। उसके कुछ दिनों बाद, 8-8-1988 को श्री स्वामीजी गंगा दर्शन को सदैव के लिये छोड़कर चले गये। एक वर्ष तक सिद्ध तीर्थों का दर्शन कर अपने इष्ट त्र्यम्बकेश्वर महादेव से आशीर्वाद और निर्देश पाकर, श्री स्वामीजी 23 सितंबर 1989 को देवघर के पास रिखिया गाँव पहुँच गये और अपने को 'पंचाग्नि तप' में लीन कर लिया।

जनवरी 1990 में स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के सान्निध्य में भारतीय खनिज विद्यापीठ (आइ.एस.एम) धनबाद के सभागार में एक योग सम्मेलन का आयोजन हुआ था। उस सम्मेलन के मंच संचालन का दायित्व मुझे सौंपा गया था। उसी समय ज्ञात हुआ कि 31 दिसम्बर की मध्य रात्रि में रिखिया में श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन को 'परमहंस' दीक्षा से विभूषित किया है। दिन का भोजन स्वामीजी संन्यासियों के साथ सभागार के पास ही करते थे। मुझे और विमलेश (पत्नी) को भोजन की व्यवस्था में सहयोग का सौभाग्य मिला था। इस दौरान मैं स्वामीजी के और निकट आया। अब श्री स्वामीजी अपने नये संकल्प के कारण सहज रूप से उपलब्ध नहीं थे। इस तरह स्वामी निरंजन मेरे हृदय केन्द्र में आते गये।



अवकाश ग्रहण और सेवा व्रत की दीक्षा

31 मार्च 1994 को मेरा भारत सरकार की सेवा से अवकाश ग्रहण पूर्व निर्धारित था। कुछ वर्ष पूर्व से मैं चिन्तन करता रहा था कि अवकाश ग्रहण के बाद क्या करना है। अपनी पत्नी विमलेश की सहमति से मैंने निर्णय लिया कि मैं अपने को स्वामी निरंजन और बिहार योग विद्यालय के मिशन को समर्पित करूँगा।

उक्त निर्णय को सामने रखकर मैं जनवरी 1994 में आश्रम पहुँचा, स्वामी निरंजन से मिला और उन्हें अपने संकल्प से अवगत कराया। स्वामीजी सुनकर प्रसन्न हुए और मुझे चैत्र नवरात्रि में आने को कहा। साथ में यह भी कहा कि माता जी एवं परिवार को भी साथ में लाऊँ। मैं धनबाद लौटा और सबको अप्रैल में मुंगेर चलने को तैयार रहने को कहा।

इस बीच कुछ अप्रत्याशित घटित हुआ, जो मेरी कल्पना से भी परे था। मार्च 1994 के तीसरे सप्ताह के आरंभ में खान सुरक्षा निदेशालय के, जहाँ मैं कार्यरत था, निदेशक (प्रशासन) ने फोन पर मुझसे कहा कि उन्हें मुझसे किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर परामर्श करना है। मैंने विनोद में उनसे कहा कि जो व्यक्ति 15 दिनों में अवकाश ग्रहण करने जा रहा है उससे परामर्श का क्या महत्त्व हो सकता है। उन्होंने उत्तर दिया, 'मैं इस विषय में गंभीर हूँ; परामर्श आवश्यक है।'

मैं उनके कार्यालय पहुँचा। औपचारिकताओं के बाद उन्होंने कहना आरंभ किया, "बंगाल में आसनसोल के पास स्थित न्यू केन्दा कोलियरी में जल भर जाने के कारण 43 खान कर्मियों की मृत्यु हो गयी है। भारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने दुर्घटना की व्यापक जाँच के लिये एक 'जाँच आयोग' का गठन किया है, जिसके अध्यक्ष होंगे कोलकता उच्च न्यायालय के एक अवकाश प्राप्त न्यायाधीश। आयोग के लिये एक सचिव को नियुक्त करने का भार सरकार ने हमें सौंपा है। आयोग का कार्यकाल दो से तीन वर्ष का होगा।"

यह सब सुन कर मैंने उनसे पूछा, 'यह सब मुझे क्यों सुना रहे हैं?' उत्तर न देकर उन्होंने कहा, 'मैंने मुख्यालय उपमहानिदेशक से इस विषय पर बात कर ली है। महानिदेशक महोदय से भी, जो इलाज के लिये चेन्नई गये हुए हैं, बात कर ली है। और हमने आपका नाम मंत्रालय को प्रस्तावित भी कर दिया है।' यह सुनकर मैं कुछ जागरूक हुआ। वे कहे जा रहे थे – 'आप 31 मार्च को अवकाश ग्रहण कर, 1 अप्रैल से ही आयोग के सचिव का पदभार ग्रहण कर सकते हैं। आपका वेतनमान यही रहेगा, मूल वेतन भी यही रहेगा। केवल इस

पद पर आपकी नियुक्ति नयी होगी। इस बारे में मंत्रालय के संयुक्त सचिव से भी बात हो गयी है। मैं कल शाम नई दिल्ली जा रहा हूँ, लौटते समय आपका नियुक्ति पत्र लेता आऊँगा।'

मैंने कहा, 'क्षमा करें! यह मुझे स्वीकार्य नहीं है।' वे कुर्सी पर बैठे-बैठे उछल पड़े, और बोले – 'आप जानते हैं, आप क्या कह रहे हैं? आप होश में तो हैं!' मैंने उत्तर दिया – 'जहाँ तक मैं समझता हूँ, मैं होश में ही हूँ।' इस पर वे कहते हैं – 'आप जानते हैं! इस विभाग के सौ वर्षों के इतिहास में आप पहले व्यक्ति हैं, जिन्हें भारत सरकार अपनी ओर से पुनर्नियुक्ति का प्रस्ताव दे रही है और आप उसे ठुकरा रहे हैं।' मैंने कहा – मैं पूरी जिम्मेदारी से 'न' कह रहा हूँ।

वे कहने लगे – आपने तो इस विभाग और मेरी साख मंत्रालय में गिराने का काम किया है। हाँ, मेरी इतनी गलती है कि मैंने पूर्व में आपसे परामर्श नहीं किया। मैंने सोचा इसमें क्या राय लेनी है। आप स्वीकार कर ही लेंगे। कोई 'न' कह सकता है यह मेरी कल्पना से भी परे है। यह कहकर वे कुछ देर उदास बैठे रहे। फिर कहते हैं – बात क्या है? यह 'न' क्यों?

मैंने उन्हें मुंगेर में जनवरी में हुई बात से अवगत कराया और कहा कि मैं कुछ वर्ष और धन कमाने के लालच में अपने गुरुदेव की नजरों में गिरकर अपना पूरा भविष्य दाँव पर लगाने को कतई तैयार नहीं हो सकता। अब मैं किस मुँह से स्वामीजी से जाकर कहूँ कि अभी दो-तीन वर्ष बाद सेवा के लिये आऊँगा। पूरी संभावना है कि यह अवसर मैं सदा के लिये खो दूँगा। इसीलिये यह प्रस्ताव मुझे स्वीकार्य नहीं है।

घटनाक्रम पर बाद में मैंने कई बार चिन्तन किया तो मन में प्रश्न उभरा – 'आखिर मेरे लिये, बिना मेरे माँगे, बिना मुझसे पूछे यह व्यवस्था क्यों? जो आज तक नहीं हुआ, वह आज मेरे लिए क्यों?' एक विचार आया – 'हो न हो, यह सारी व्यवस्था स्वामी निरंजन ने मेरी परीक्षा लेने के लिए आयोजित की हो। शायद उन्होंने सोचा होगा कि यह व्यक्ति छाती ठोंक कर सेवाव्रत लेने जा रहा है, अवकाश ग्रहण के तुरंत बाद। देखें तो यह कितने पानी में है? और यह मायाजाल सामने ला दिया। इसमें कोई भी फँस जाता। मैं कैसे बच निकला, मुझे स्वयं खबर नहीं है। सोचता हूँ स्वामीजी ने ही करुणावश, मुझे उस क्षण सद्बुद्धि दी होगी, क्योंकि वे मुझे अपने से दूर नहीं रखना चाहते होंगे।'



इस मायाजाल से बचते-बचाते मैं परिवार सहित 10 अप्रैल को गंगा दर्शन पहुँच गया। और मेरे जीवन के स्वर्णिम काल के आरंभ का दिन आया, 18 अप्रैल, दिव्य अष्टमी को। कुटीर में पत्नी और बच्चों की उपस्थिति में स्वामीजी ने मुझे गैरिक वस्त्र देकर कर्म संन्यास में दीक्षित किया। नाम दिया, संन्यासी आत्माभिषेक। मैं उस क्षण बहुत आनन्दित था।

स्वामीजी मुझसे पूछते हैं – 'आपने इतनी प्रतीक्षा क्यों की? मैं आपको बहुत वर्षों से जानता हूँ।' सुनकर उस समय भी बहुत अच्छा लगा था। अभी सोचता हूँ तो लगता है मैं स्वामीजी की निगाह में आरंभ से ही था। मैं ही संकोची स्वभाव के कारण आगे बढ़ने में हिचकिचा रहा था। मैंने उत्तर दिया, 'स्वामीजी, इससे पहले मैं सरकारी नौकरी में था, और नौकरी मैंने पूरी जिम्मेदारी से करने की कोशिश की है। नौकरी और परिवार को समय देने के बाद मेरे पास समय नहीं था कि आप की सेवा कर पाता। साथ ही मैंने अपने मन में यह बैठा लिया था कि गेरू वस्त्र मैं तभी पहनूँगा जब आपकी सेवा करने की स्थिति में अपने को पाऊँगा। मैं नहीं जानता कि यह निर्णय लेकर मैंने उचित किया था या अनुचित। आज मैं सेवा करने की स्थिति में हूँ और आपके सामने हूँ।' स्वामीजी मेरी बातें सुनकर खूब हँसे।

कुछ देर बाद स्वामीजी पूछते हैं – आपने सेवा के बारे में क्या सोचा है? मैंने कहा – कुछ नहीं सोचा है। 'अभी परिवार और सामान के साथ अजमेर,

जहाँ बेटा शैलेश है, जाने का टिकट ले रखा है। वहाँ इन्हें छोड़कर आप जहाँ और जब जाने को कहेंगे, चल दूँगा।' इस पर स्वामीजी कहते हैं, 'आप अजमेर रह कर ही योग सिखाइये।' और एक कागज पर अपने हाथ से लिखा – 'योग प्रशिक्षण – घर में, कार्यालयों में, उद्योगों में, विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में विशेष स्वास्थ्य प्रबंधन परियोजनायें; विशेष तनाव प्रबंधन परियोजनायें।'

और फिर घोषित करते हैं, 'पश्चिमी भारत में आप मेरे पहले प्रतिनिधि होंगे।' सुनकर मैं अवाक् रह गया। यह क्या? इन्हें मुझ पर इतना अधिक भरोसा है। मेरे बारे में यह जानते ही क्या हैं? मेरी क्षमताओं की भला इन्हें कितनी जानकारी होगी? आज सोचता हूँ तो लगता है मूढ़ तो मैं था। मैं उन्हें एक साधारण स्वामी के रूप में ही देख रहा था। वे आजन्म सिद्ध हैं, योगी हैं, ज्ञानी हैं। वे मेरे बारे में क्या नहीं जानते हैं! यह कह कर उन्होंने वे क्षमताएँ मुझमें पैदा कर दी होंगी, जो तब तक नहीं थीं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि उन्होंने उस दिन मुझे अपना प्रतिनिधि बनाने का आशीर्वाद दे डाला।

स्वामीजी के सुझाव की मेरे द्वारा अनदेखी

मैं अजमेर से 1994 गुरु पूर्णिमा के अवसर पर गंगा दर्शन आया था। बिहार योग भारती का पहला चातुर्मासिक सत्र आरंभ होने जा रहा था। स्वामीजी ने मुझसे कहा – 'आप इस सत्र में भाग लीजिये।' मैंने अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए उत्तर दिया – मैं इसके अयोग्य हूँ; क्योंकि मेरी अवस्था निर्धारित अवस्था से अधिक है। स्वामीजी कहते हैं, 'यह वय की सीमा योगियों के लिये नहीं है'। मैं फिर भी मूढ़ता में डूबा रहा। एक दूसरी काट निकाली और कहा – 'स्वामीजी! अभी अजमेर जाकर कुछ योग का काम आरंभ किया है। चार माह वहाँ से बाहर रहूँगा तो फिर नये सिरे से आरंभ करना होगा।' स्वामीजी को पता चल गया होगा कि अभी इसे अपनी बुद्धि पर बहुत भरोसा है। वे चुप हो गये। कुछ समय बाद, जब बुद्धि का प्रभाव मुझ पर कुछ कम हुआ तो इस घटना पर चिन्तन किया। अपनी मूर्खता पर तरस आया कि मैं स्वामीजी के निर्देशों की लगातार अनदेखी करता रहा। उनकी बात न मानकर मैंने अपनी बहुत बड़ी हानि कर डाली है। यह बात मेरी समझ में आई है। स्तोत्र पाठ करते हैं – *मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यम्।* इसका भाव आत्मसात् करने पर यही भाव उभरा कि गुरु के श्रीमुख से निकला प्रत्येक

शब्द मूल्यवान् है। मैंने कान पकड़े कि भविष्य में अब कभी स्वामीजी के किसी निर्देश की अनदेखी नहीं करूँगा।

प्रथम शतचण्डी यज्ञ की कुछ यादें

1995 में प्रथम शतचण्डी यज्ञ का आयोजन रिखिया में हुआ था। उन दिनों रिखिया में ठहरने और भोजन की व्यवस्था नहीं थी। हम सभी देवघर में ठहरे थे। पहले दिन पाठ आरंभ हुआ तो मैं भी उसमें शामिल हो गया, क्योंकि मुझे कोई सेवा नहीं मिली थी। कुछ देर बाद स्वामीजी आये और इशारे से बुलाकर पूछा कि आपको किसने पाठ में बैठने को कहा है। मुझे सेवा दी गई। कुछ दिन बाद श्री स्वामीजी के समक्ष वरिष्ठ संन्यासियों को ले जाने के लिए पंक्तिबद्ध किया गया। स्वामी निरंजन ही सारी व्यवस्था देख रहे थे। उनके आदेश से मुझे भी खड़ा किया गया। बाद में श्री स्वामीजी ने सभी को टीका लगाया और माला भी पहनाई। मेरे लिए यह एक सपना था कि श्री स्वामीजी मुझ जैसे साधारण कर्म संन्यासी को टीका लगायें और माला पहनायें।

बाद में *'भक्ति योग सागर – 1'* छप कर वहाँ पहुँची। स्वामी निरंजन परिक्रमा कर रहे लोगों में से कुछ को बुला कर अपने हाथों वह पुस्तक प्रसाद स्वरूप दे रहे थे। मुझे भी प्रसाद मिला।

मेरे द्वारा गंगा दर्शन में पहली बार स्वास्थ्य रक्षा सत्र का संचालन

वर्ष 1996 में सम्बलपुर योग सम्मेलन में भाग लेकर मैं स्वामीजी के साथ 7 अप्रैल को गंगा दर्शन वापस पहुँचा। बाद में स्वामीजी से चर्चा कर तय हुआ कि मुझे 4 जून को गंगा दर्शन पहुँच जाना है और तत्पश्चात् 5 जून को स्वामीजी के साथ बिलासपुर के लिये चल देना है, वहाँ आयोजित होने वाले योग सम्मेलन में शामिल होने के लिये। मैं अजमेर लौट गया।

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार, बल्कि एक दिन पहले, 3 जून को मैं गंगा दर्शन पहुँच गया। शाम के 4 बजे जैसे ही मैंने अपना सामान मुख्य भवन के सामने रखा तो देखा आश्रमवासी कुटीर की ओर दौड़े जा रहे हैं। मैंने पूछा तो उत्तर मिला – स्वामीजी, बिलासपुर के लिए जा रहे हैं। मैंने सोचा, आज तो 3 जून ही है, आज कैसे जा सकते हैं?

मुझे लगा ये लोग कुछ गलतफहमी में हैं। यह सोचते हुए मैं भी कुटीर की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचा तो स्वामीजी गाड़ी में अपना एक पैर रख चुके थे।

मैंने कुछ जोर से पूछा – आप कहाँ जा रहे हैं? स्वामीजी बोले – बिलासपुर। मेरा दूसरा प्रश्न था – आज तो 3 जून ही है। स्वामीजी बोले – वहाँ कुछ काम है, इसीलिये जल्दी जा रहे हैं। इस पर मैं पूछ बैठा, 'मेरा क्या होगा? मुझे आपके साथ जो चलना था!' स्वामीजी बोले – 'पाँच मिनट में आ सकते हैं तो चलिये साथ में।' मैंने कहा – 'मैं अभी आया।'

मैं दौड़कर कोर्टयार्ड पहुँचा। अपना सूटकेस उठाया और जब कुटीर पहुँचा तो वहाँ का माहौल बदल चुका था। स्वामीजी कहते हैं – 'आप कल आ जाइये। अभी दो दिन की यात्रा करके आप आये हैं, थक गये होंगे।' मैंने प्रतिवाद किया – 'मैं थका नहीं हूँ और फिर मैं कल कैसे आ पाऊँगा?' इस पर स्वामीजी आश्रम प्रभारी को संबोधित कर कहते हैं – 'कल इनका टिकट करा देना।' मेरे हृदय की बात मेरे मुख से निकली, 'आप मुझे छोड़कर जा रहे हैं; मैं जान रहा हूँ कि अब मैं नहीं आ पाऊँगा।' और स्वामीजी चल दिये।

अगले दिन प्रात: सिन्हा जी को टिकट खरीदने के लिये कहा। वे शाम 4 बजे आकर बता गये कि टिकट नहीं मिली। मैं जानता तो था कि टिकट मिलने की संभावना नहीं के बराबर है, फिर भी उनकी 'न' सुनकर कुछ उदास हो गया। मेरे मन में कल से ही चिन्तन चल रहा था कि स्वामीजी ने पहले आने को कहा और फिर छोड़ गये। इसके पीछे अवश्य कोई बात होनी चाहिए। थोड़ी ही देर में इसका भेद खुल गया। मैं इसी मन:स्थिति में मुख्य भवन के बाहर खड़ा था तभी आश्रम प्रभारी आती दिखायी दीं। मैंने उदास भाव से उनसे कहा, 'स्वामीजी, टिकट नहीं मिली।' इस पर वे तपाक से बोलीं, 'मुझे प्रसन्नता है कि आपको टिकट नहीं मिली।' मैंने प्रतिक्रिया की, 'मुझे टिकट नहीं मिलने से आप क्यों प्रसन्न हैं, जबकि मैं दु:खी हो रहा हूँ।' अब उन्होंने रहस्य पर से पर्दा उठाते हुए कहा, 'इस बार स्वास्थ्य रक्षा सत्र के दो बैच होंगे, एक तो शिवानन्द आश्रम में होगा ही, दूसरा कल से गंगा दर्शन में होगा। आपको यहाँ कल से स्वास्थ्य रक्षा सत्र की कक्षायें लेनी हैं।'

5 जून को स्वास्थ्य रक्षा सत्र का उद्घाटन हुआ। मैंने आश्रम प्रभारी से अनुरोध किया कि मुझे इस सत्र के पाठ्यक्रम की एक प्रति दिला दी जाये। उन्होंने कहा 'आप शुरू कीजिये पाठ्यक्रम मिल जायेगा।' मैं प्रतिदिन आरंभ के 5 दिन उनके पास शाम को जाता और पाठ्यक्रम की प्रति माँगता, लेकिन पता नहीं क्यों, वही बँधा-बँधाया उत्तर मिलता रहा, 'आपको मिल जाएगा।'

फिर मैंने माँगना बंद कर दिया और अन्त तक मुझे पाठ्यक्रम नहीं दिया गया। मैंने अपनी समझ से जो ठीक समझा, पढ़ाया, सिखाया।

और इस प्रकार बिना किसी पूर्व जानकारी के मुझसे यह सत्र करवा लिया गया। गंगा दर्शन में प्रशिक्षण देने का मेरा यह पहला अवसर था।

पूरे घटनाक्रम पर जब चिन्तन किया तब समझ में आया कि स्वामीजी मुझे इसीलिए छोड़ गये हैं। ऐसे में मुझे टिकट कैसे मिल सकती थी! सत्र समाप्त होने के बाद स्वामीजी वापस आ गये और एक दिन मुझसे बातचीत के दौरान उन्होंने मुझसे कहा कि मैं सितंबर तक मुंगेर पहुँच जाऊँ, क्योंकि चातुर्मासिक सत्र के प्रारम्भिक 5 सप्ताहों तक मुझे, आसन-प्राणायाम की कक्षाएँ लेनी होंगी। मैंने हामी भर दी।

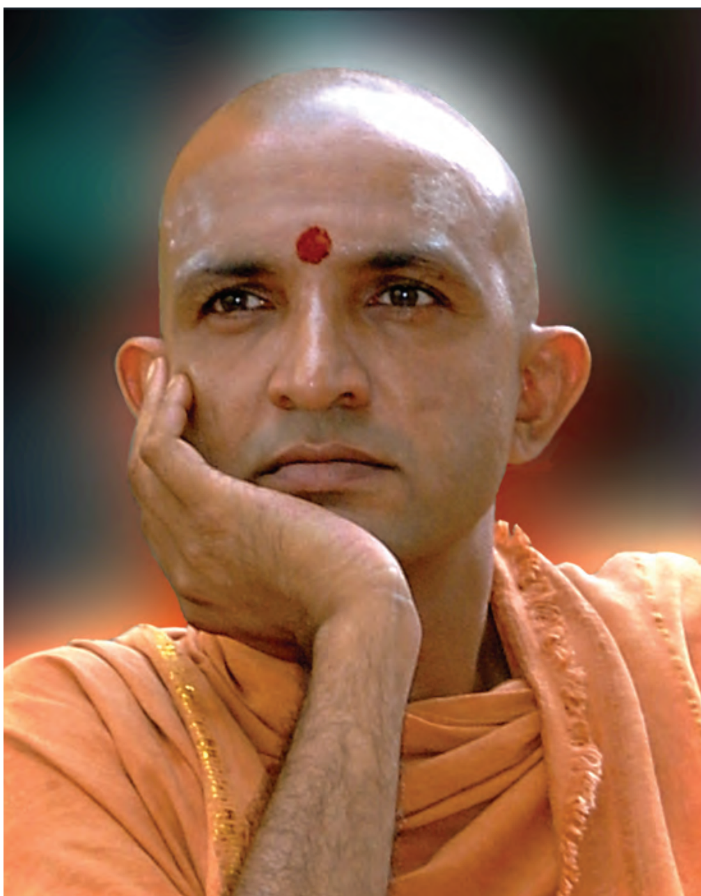
इसके बाद स्वामीजी के साथ-साथ हम कुटीर पहुँचे। वहाँ आश्रम प्रभारी को देखकर स्वामीजी कहते हैं, 'मैंने आत्माभिषेक जी को चार्तुमासिक सत्र में शुरू के 5 सप्ताहों तक आसन-प्राणायाम की कक्षाएँ लेने को कहा है।' इस पर वे तुरंत टिप्पणी करती हैं, 'आपने बहुत अच्छा निर्णय लिया है। इन्होंने तो स्वास्थ्य रक्षा सत्र में चमत्कार कर दिया।' मैं चौंका कि यह क्या कहे जा रहीं हैं। मेरे मुख से निकला, 'यह 60 वर्ष का बूढ़ा आदमी क्या चमत्कार करेगा? यदि चमत्कार कहीं हुआ है तो उसके करने और कराने वाले स्वामीजी ही हो सकते हैं।' उपस्थित सभी लोग हँस दिये।

स्वामीजी का दिव्य आभा मण्डल!

1996 में ही इन्दौर में कार्यक्रम सम्पन्न करने के बाद स्वामीजी भोपाल आये थे, मैं भी उनके साथ था। स्वामीजी का मुख्य कार्यक्रम शाम को भारत हैवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड के सभागार में होना तय था।

मैं अवकाश प्राप्त खान सुरक्षा महानिदेशक, श्री विद्याचन्द्र वर्मा के अनुरोध पर उनके यहाँ ठहरा था। इसी विभाग से मैंने 1994 में अवकाश ग्रहण किया था।

वर्मा जी के साथ जब मैं सभागार में पहुँचा तो सभागार पूरा भर चुका था। स्वामीजी एक चौकी पर लगाये गये आसन पर विराजित थे। स्वामीजी के इशारा करने पर लोगों को मंच पर बैठाया गया। जब हम पहुँचे, तब तक मंच भी भर चुका था। मुझे स्वामीजी के ठीक आगे, उनके आसन के नीचे बैठाया गया और वर्मा जी को स्वामीजी के ठीक पीछे, चौकी के नीचे बैठने



का स्थान मिला। स्वामीजी का उद्‌बोधन सदैव की भाँति उच्च कोटि का रहा। वर्मा जी के साथ उनके घर लौटते हुए मैंने उनसे स्वामीजी के प्रवचन के बारे में पूछा। वर्मा जी का उत्तर अप्रत्याशित था। उन्होंने कहा, 'मैंने प्रवचन सुना ही नहीं, मैं तो पूरे समय स्वामीजी के दिव्य आभा-मण्डल में खोया रहा।'

उन्होंने मुझे बताया कि अवकाश प्राप्ति के बाद मैंने प्राणिक हीलिंग में दिलचस्पी ली और बाद में मास्टर कोर्स भी कर लिया है। वे ऊर्जा को महसूस कर सकते हैं और देख भी सकते हैं।

उन्होंने अपनी इसी क्षमता का प्रयोग करते हुए स्वामीजी के पूरे प्रवचन के दौरान, उनके आभा मण्डल को निहारा। संयोग से उन्हें इस कार्य को सम्पन्न

करने के लिये सबसे अधिक सुरक्षित स्थान मिला था, स्वामीजी की चौकी के ठीक पीछे। और वे निर्बाध रूप से लगभग डेढ़ घंटे तक स्वामीजी का आभामण्डल निहारते रहे, उसी में खोये रहे। वर्मा जी ने कहा, 'आपके गुरु वास्तव में दिव्य हैं। मैंने आज तक किसी का भी आभा मण्डल इतना अधिक चमकीला और इतना विशाल नहीं देखा है। देखना तो दूर, मेरी कल्पना के भी परे है। मैंने आज इस अवसर का भरपूर आनन्द उठाया है।'

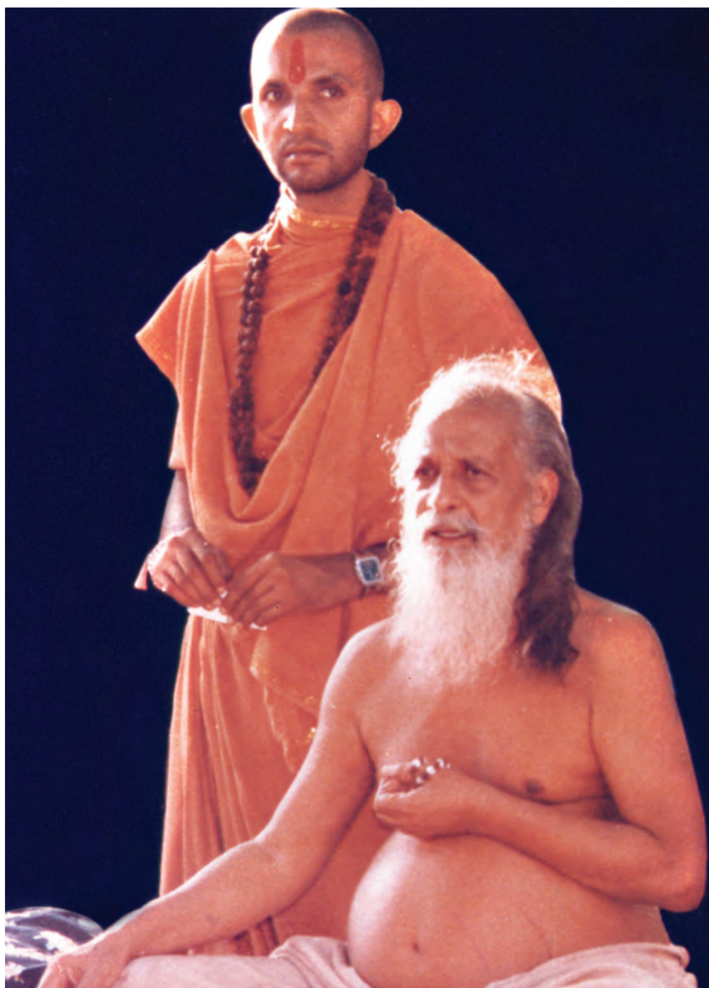
उनके कथन को सुनकर मैं मन-ही-मन बहुत प्रफुल्लित हो रहा था। मेरे स्वामीजी महान् हैं। वर्मा जी जैसा गंभीर और सहज प्रकृति का व्यक्ति कहानियाँ गढ़ेगा, ऐसा मैं सोच भी नहीं सकता। उन्होंने जो अनुभव किया, जो देखा, वही कहा है। मेरे स्वामीजी दिव्यता से पूर्ण हैं, फिर भी मुझ जैसे तुच्छ प्राणी पर अपनी दया दृष्टि बनाये हुए हैं, यह मेरे लिये गौरव की बात है।

स्वामी निरंजन–गरुड़ के अवतार!

मैं जुलाई 1998 में नोएडा से इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ से धनबाद होकर मेरा मुंगेर जाने का कार्यक्रम था। मैं मुम्बई-हावड़ा मेल में रात 9 बजे बैठा। मेरी बर्थ पर एक प्रौढ़ पुरुष और मध्यम आयु की महिला बैठी थी। कुछ ही मिनटों बाद पुरुष ने महिला को ऊपरी बर्थ पर जाने को कहा। फिर मुझसे पूछते हैं, 'क्या आप अभी सोना चाहते हैं?' मेरे यह कहने पर कि इतनी जल्दी तो नहीं सोऊँगा, वह सज्जन तपाक् से बोले, 'मैं भी आपसे बातें करना चाहता हूँ।' सुनकर मन में खटका हुआ कि अभी मुझे आये पाँच मिनट भी नहीं हुए हैं और यह श्रीमान् जी मुझसे बातें करने को उतावले हो रहे हैं।

मैं चुप ही रहा। वे कहते हैं, 'आप बहुत धार्मिक हैं। हृदय के बहुत अच्छे हैं, बहुत सरल हैं।' मैंने उन्हें टोका, 'यह सब क्या है?' उत्तर में वे कहते हैं, 'आपने शायद गौर नहीं किया है कि जब से आप कोच में आये हैं, मैं लगातार आपके चेहरे को देखे जा रहा हूँ।' मैं सोचने पर विवश हुआ कि यह आदमी तो बहुत विचित्र है। बहुत बातूनी भी लग रहा है। लगता है रात में मुझे सोने भी नहीं देगा। प्रत्यक्षत: पूछा, 'आप मेरा चेहरा क्यों देखे जा रहे हैं?' इस पर वे बोले, 'मैं फेस रीडर हूँ।' और फिर मेरा गुणगान खूब बढ़ा-चढ़ा कर करना आरम्भ कर दिया।

मैंने उन्हें टोकते हुए पूछा, 'आपने फेस रीडिंग कहाँ से सीखी है?' उनका उत्तर रहस्यमय था 'यह विचित्र कहानी है। आप विश्वास नहीं कर सकेंगे।'



तब मुझे लगा कि यह व्यक्ति बहुत गहराई में गया प्रतीत होता है। मैंने कहा, 'तब तो वह कहानी मैं सुनना चाहूँगा।' उन्होंने कहना आरम्भ किया, 'मैंने फेस रीडिंग सीखी नहीं है। मुझे आती है। कहानी है कि मेरी माँ के दस पीढ़ी पहले उनके कोई बाबा ने किसी साधु-सन्त की सेवा की थी। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर वह सन्त चलते समय उन्हें आशीर्वाद के रूप में वरदान दे गये कि तुम किसी का भी चेहरा देखकर उसका भूत, भविष्य और वर्तमान सब कुछ जान जाओगे। तुम्हारे बाद यह विद्या तुम्हारे वंश में दस पीढ़ी तक हर पीढ़ी में किसी

एक व्यक्ति को विरासत में मिलती रहेगी।’ इतना बताने के बाद वे कहते हैं, ‘मैं दसवीं पीढ़ी में हूँ।’ मैं यह कहानी सुनकर घोर आश्चर्य में डूब गया। ऐसा आशीर्वाद जो दस पीढ़ी तक प्रभावी रहा हो, आज तक मैंने कहानी में भी नहीं सुना है और उन्हें थोड़ा गंभीरता से लेने लगा।

वे फिर मेरे चेहरे पर अटक गये और गुणगान करने लगे। मैंने इस गुणगान में रुचि न लेते हुए उनसे कहा, ‘आप कहाँ इस फालतू चेहरे में उलझे हुए हैं?’ मैं दिखाता हूँ आपको देखने लायक चेहरे। यह कह कर मैंने एक कैलेण्डर कार्ड निकाला। उस कार्ड में सामने की ओर श्री स्वामीजी का सुन्दर चित्र था और उनकी बगल में स्वामी निरंजन का। वह कार्ड जैसे ही मैंने उनके हाथों में दिया, वे उछल पड़े। वे बार-बार चित्र को माथे से लगाते रहे।

उनका यह हाल देख मैंने पूछा, ‘आप यह क्या कर रहे हैं?’ उनका उत्तर था, ‘आपने यह क्या दिखा दिया? मैंने आज तक हजारों चेहरे देखे हैं, किन्तु ऐसा विलक्षण चेहरा एक भी नहीं देखा।’ उनकी निगाह फोटो से हट ही नहीं रही थी। मैंने उनसे पूछा, ‘इन दो फोटो में से कौन-सा चेहरा?’ उन्होंने स्वामी निरंजन के चित्र पर अंगुली रखते हुए कहा, ‘यह!’ फिर कहते हैं, ‘ये मनुष्य नहीं हैं।’ मैंने प्रतिवाद किया, ‘क्या मतलब? मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य तो हैं ही।’ उनका उत्तर था, ‘ मनुष्य नहीं है का अर्थ है, यह अवतार हैं।’ मैंने पूछा, ‘किसके अवतार हैं?’ उनका उत्तर था, ‘गरुड़ के।’ स्वामीजी के चित्र का विश्लेषण करते हुए कहते हैं, ‘इनकी नाक लम्बी और नुकीली है; गरुड़ की तरह इनकी बाँहें लम्बी हैं, गरुड़ के विशाल पंखों की तरह इनके कान भी लम्बे हैं।’ यह सुनते ही मेरा ध्यान हाल ही में स्थापित बिहार योग भारती के प्रतीक पर चला गया। उस प्रतीक में बीच में गरुड़ ही तो बैठा है। मुझे लगा कि यह व्यक्ति सचमुच में इस दिव्य विद्या को जानता है। इसकी उद्घोषणा सही प्रतीत हो रही है।

वे चित्र में खोये हुए थे। मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा, ‘और यह दाढ़ी वाले बाबा?’ उनका उत्तर न आते देख मैंने ही कहा, ‘यह बाबा जी फिर भगवान विष्णु के अवतार हैं, जो अपना वाहन साथ लेकर आये हैं।’ उन्होंने हामी भरते हुए सिर हिला दिया।

बाद में वे कहते हैं, ‘आपने यह चित्र दिखा कर मुझ पर बहुत उपकार किया है।’ मैंने कहा, ‘अभी तो आपने चित्र देखा है। आप मुंगेर आश्रम जाकर उनके साक्षात् दर्शन कर सकते हैं।’ मैंने उन्हें मुंगेर और आश्रम के बारे में बताया।

स्वामीजी के बारे में एक अनजान व्यक्ति द्वारा ऐसी विचित्र उद्घोषणा करना आश्चर्य मिश्रित सुखद अनुभव रहा।

मेरा विजिटिंग कार्ड और स्वामीजी

यह घटना संभवत: 1998 की है। मैं नोएडा रहने लगा था। स्वामीजी ने मेरे अनुरोध पर मेरे फ्लैट का नाम दिया, 'सत्यम् स्मरण।' मेरे द्वारा संचालित योग केन्द्र का नाम भी 'अजमेर योग मित्र मण्डल' से बदल कर 'सत्यानन्द योग केन्द्र' कर दिया गया। इस परिवर्तन के कारण मैंने अपने परिचय के लिये नया विजिटिंग कार्ड और नये लेटर हेड का प्रारूप स्वामीजी की स्वीकृति के लिये दिया था। उन्होंने बिना किसी परिवर्तन के अनुमोदित कर दिया था। दोनों में विशेषता थी कि मैंने ऊपर बिहार योग विद्यालय, उसके नीचे संस्थापक परमहंस... उसके नीचे परमाचार्य... उसके नीचे पता, फोन, फैक्स आदि और उसके नीचे अपना नाम, पता, फोन नम्बर इत्यादि दिया था।

अगली बार जब मैं गंगा दर्शन गया तो कुछ नये छपे विजिटिंग कार्ड लेता गया, उन गुरु भाइयों को देने के लिये जो मुझसे संपर्क साधने के इच्छुक हो सकते हैं। एक दिन मैं कुटीर के सामने खड़ा था, तभी एक सज्जन के अनुरोध पर मैंने अपना विजिटिंग कार्ड बैग से निकाल कर दिया। कुछ क्षणों बाद स्वामीजी वहाँ पहुँचे। मैं जैसे ही उनके पास पहुँचा, उन्होंने अचानक अपना दायाँ हाथ मेरे बैग में घुसा दिया। मैं हैरान कि यह क्या कौतुक कर रहे हैं स्वामीजी! तभी देखता हूँ कि उनका हाथ बाहर निकला और उसमें मेरा विजिटिंग कार्ड भी था। स्वामीजी बड़े भोलेपन से कहते हैं, 'क्या मैं इसे ले सकता हूँ?' मैं हतप्रभ हो उन्हें निहारे जा रहा था। मैंने निवेदन किया, 'स्वामीजी! यह कार्ड उन लोगों के लिये है जो मेरा परिचय चाहते हैं या मेरे बारे में ठीक से नहीं जानते हैं। आप से मेरा क्या छिपा है? मेरे बारे में आप क्या नहीं जानते हैं? इसलिये आपको यह देने की बात कभी सोची ही नहीं।' और फिर कटाक्ष करते हुए मैंने कहा, 'खैर! आपने जब ले ही लिया है, तो रख लीजिये अपने पास।'

कितना भोलापन! कितनी बाल सुलभ सरलता और चपलता! इन्हें इस समय जिसने देखा होगा, क्या वह विश्वास कर पायेगा कि ये परमहंस, सिद्ध सन्त हैं! अवतारी पुरुष हैं!

आप मुंगेर आ जाइये! स्वामीजी को आपकी जरूरत है

आज से लगभग 13-14 वर्ष पहले जब मैं गंगादर्शन, मुंगेर आया करता था, उस समय अनेक गुरुभाइयों से परिचय हुआ था, उनमें से एक थे गुरुमाला जी। मैंने अनुभव किया कि वे मुझमें आरंभ से कुछ अधिक ही रुचि लेते थे और बड़े अधिकारपूर्वक मुझे कुछ सलाह भी दिया करते थे। उसमें से उनकी एक सलाह कुछ अधिक ही विशेष हुआ करती थी। मैं जब भी उनसे मिलता, उस सलाह को दोहराना वे नहीं भूलते थे। मुझे आश्चर्य होता था कि वे आखिर ऐसा क्यों कहते रहते हैं। उनके कुछ पूर्वनिर्धारित वाक्य हुआ करते थे, 'आप नोयडा में क्या कर रहे हैं? गंगादर्शन क्यों नहीं आ जाते? स्वामीजी को आपकी बहुत जरूरत है। यहाँ वे बिल्कुल अकेले हैं।' उत्तर में मैं कहता, 'स्वामीजी का एक छोटा-सा संकेत भर मिलने की देर है, मैं मुंगेर आ जाऊँगा। लेकिन आप ऐसा क्यों कहते हैं?' वे कहते, 'नहीं, आप तुरन्त मुंगेर आ जाइये।' मुझे उनके इन रहस्यमय वाक्यों का अर्थ कभी समझ में नहीं आया और कुरेदने पर वे इससे अधिक कुछ खुलते भी नहीं थे। अगली बार गंगादर्शन आया तो सूचना मिली कि गुरुमाला जी अचानक हमें छोड़कर चले गये हैं।

उनके द्वारा अक्सर दोहराये गये इन वाक्यों को मैं भूल-सा गया था कि कुछ दिन पहले स्वामीजी की लीलाओं पर चिन्तन करते-करते मुझे गुरुमाला जी और उनके कहे वाक्य याद आ गये। इन दिनों मुझ पर स्वामीजी की जो अगाध कृपा, अपनत्व और प्रेम बरस रहा है, उसके परिप्रेक्ष्य में गुरुमाला जी के उन रहस्यमय वाक्यों का गूढ़ार्थ कुछ-कुछ समझ में आता दिखा। हमारे बीच जो प्रगाढ़ता आयी है, उसके मूल में स्वामीजी की अगाध कृपा ही है। वरना उनके मेरे जैसे लाखों शिष्य/भक्त हैं। कौन उनसे प्रगाढ़ सम्बन्ध बनाना नहीं चाहता?

मुझे यह लिखते-लिखते 2006-07 की एक छोटी-सी, किन्तु इसी संदर्भ से जुड़ी घटना याद हो आयी है। मैं गंगादर्शन आया हुआ था। एक प्रात: कुटीर के सामने रेलिंग के निकट उत्तर की ओर मुख किये स्वामीजी बैठे थे। मैं पहुँचा, प्रणाम किया और उनकी कुर्सी के ठीक दायीं ओर उनके चरणों के निकट बैठ गया और जब तक स्वामीजी वहाँ बैठे, मैं भी बैठा रहा। मुझे वहाँ इस तरह बैठा देखकर आश्रम के ही एक वरिष्ठ स्वामी बाद में मुझसे पूछ बैठे कि मैं इस तरह स्वामीजी के पास क्यों बैठता हूँ। मैंने सहजता से उत्तर दिया, पहली बात यह है कि जब तक स्वामीजी न चाहें, उनके निकट बैठने



की हिम्मत कोई भी नहीं कर सकता। तात्पर्य यह है कि स्वामीजी की अप्रत्यक्ष अनुमति पाकर ही मैं वहाँ बैठता हूँ। दूसरी बात है कि मुझे उनके चरणों के निकट बैठना भाता है। लेकिन उनकी इच्छा सर्वोपरि है। वे न चाहें तो उनके निकट जाने की मैं सोच भी नहीं सकता।'

गुरुमाला जी के रहस्यमय वाक्य आज कितने सार्थक होते दिख रहे हैं। मैं उन्हें आज आदरपूर्वक अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ कि स्वामीजी के अतिरिक्त वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हमारे बीच आज आयी प्रगाढ़ता को इतना पहले ही भाँप लिया था और इतने स्पष्ट शब्दों में कह डाला था। कम से कम मुझे तो उस समय इसकी कोई संभावना नजर नहीं आती थी। मैं तब भी मूढ़ था, आज भी हूँ, फिर भी स्वामीजी ने अपनी कृपा से मुझे सराबोर कर रखा है। बिन्दु जी ने कितना मार्मिक पद लिख डाला है, 'न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं।' रीझना अक्सर अकारण ही हुआ करता है।

हाल में स्वामीजी की ओर से संन्यासियों और संन्यास प्रशिक्षणार्थियों को एक प्रश्नावली दी गयी थी, जिसमें सभी से अपने आध्यात्मिक प्रयासों के सम्बन्ध में लिखने को कहा गया था। उसमें स्वामीजी के सन्दर्भ में मैंने पहला वाक्य लिखा था, 'मैं यह निश्चित रूप से जानता हूँ कि वे (स्वामीजी) मुझसे अकारण बहुत प्रसन्न रहते हैं।' कितनी सच है यह बात। मेरे इस जीवन की वास्तव में कोई उपलब्धि नहीं रही है, फिर भी स्वामीजी ने मुझे पकड़

रखा है और यह पकड़ दिन-पर-दिन और अधिक मजबूत होती जा रही है। उनकी मर्जी के बिना मैं श्वास लेना तो दूर, कुछ सोच भी नहीं पा रहा हूँ।

1999 शतचण्डी यज्ञ में घटित एक चमत्कार

यह घटना 1999 में रिखिया में आयोजित शतचण्डी महायज्ञ की है। हमारी छोटी बेटी नीना, जो सिविल इन्जीनियर है, दिल्ली में एक निजी कम्पनी में कार्यरत थी। वह मई 1983 में गंगा दर्शन, मुंगेर में केवल बच्चों के लिए एक माह के लिए आयोजित सत्र में भाग ले चुकी थी। उसका विवाह अगले वर्ष बसंत पंचमी के अगले दिन होना तय था। मैंने उससे कहा कि तुम्हें शतचण्डी यज्ञ के समय रिखिया जाकर श्री स्वामीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर लेना चाहिए। उसने भी रिखिया जाने की इच्छा प्रकट की, किन्तु मेरे साथ जाने में मजबूरी बताई, क्योंकि उसे इतने दिन की छुट्टी नहीं मिल सकती है। मेरी दीदी कमला उन दिनों अपने पुत्र के यहाँ, जो दिल्ली में कार्यरत था, आई हुई थी। वह भी रिखिया जाकर श्री स्वामीजी के दर्शन करने की इच्छुक थी। अंत में तय हुआ कि मैं यज्ञ के आरंभ में रिखिया पहुँच जाऊँगा और दीदी नीना के साथ अंतिम दो दिनों के लिए रिखिया आयेंगी।

उन दिनों हम सब को देवघर में ही ठहरना होता था, अतएव मैंने तीन बिस्तरों वाला एक कमरा ले लिया। जब दीदी और नीना आईं, वे भी उसी में आ गईं। अगली प्रात: मैं उन दोनों को लेकर जल्दी ही रिखिया पहुँच गया। मैंने प्रयास किया कि किसी तरह उन दोनों की स्वामी निरंजन से भेंट करा दूँ। किन्तु स्वामीजी की व्यस्तता के कारण मैं ऐसा नहीं कर पाया। और हमें अपने लिए निर्धारित स्थानों पर बैठ जाना पड़ा। मुझे तपोवन के सामने संन्यासियों के लिए निर्धारित स्थान में बैठाया गया। वहीं पर श्री स्वामीजी विराजे थे। संयोगवश मैं उनकी बायीं ओर बिछी दरी पर बैठा था। चूँकि दीदी और नीना सादे वस्त्रों में थीं, उन्हें यज्ञ मण्डप के पूर्व पीछे की ओर बैठने का स्थान मिल पाया था। मैंने देख लिया था कि वे कहाँ बैठी हैं। अब मैं यहाँ बैठे-बैठे सोच रहा हूँ कि इन दोनों की भेंट स्वामीजी से कैसे करा पाऊँ! कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। कुछ देर बाद मैंने यकायक देखा कि स्वामी निरंजन उठकर उसी ओर जाने लगे जहाँ वे दोनों बैठी थीं। मैं कुछ सजग हुआ और स्वामीजी को टकटकी लगाकर देखने लगा। मैंने साश्चर्य देखा कि स्वामीजी ठीक वहीं जाकर खड़े हो गये जहाँ वे दोनों बैठी थीं। यह

दृश्य देखकर मेरे हृदय ने तेजी से धड़कना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में दीदी और नीना खड़ी हो गईं। अब तो मेरा हृदय बल्लियों उछलने लगा। उनमें कुछ बातें हुईं और स्वामीजी पलट कर चलने लगे। वे दोनों स्वामीजी के पीछे चल दी। अब तो यह सोचकर मेरा बुरा हाल हो गया कि यह क्या हो रहा है और कैसे हो रहा है? स्वामीजी ने इन दोनों को श्री स्वामीजी के सामने पहुँचा दिया और खुद कहीं चल दिये।

कमला दीदी ने श्री स्वामीजी को प्रणाम करते हुए कहा, 'मैं स्वामी ओमतीर्थ की शिष्या हूँ।' श्री स्वामीजी ने कहा, 'हाँ, मैं जानता हूँ।' और अपने बायें हाथ से इशारा करते हुए दीदी से कहा, 'यहाँ बैठो।' और वे मेरे पास संन्यासियों के बीच आकर बैठ गईं। मैंने देखा कि दीदी कहीं विचारों में खो गई हैं। कुछ देर में जब वे सामान्य स्थिति में आईं तो मैंने उनसे पूछा, 'वहाँ, जहाँ वह बैठी थीं, क्या कुछ हुआ?' उन्होंने कहा 'मैं वहाँ बैठी सोच रही थी किस प्रकार श्री स्वामीजी के दर्शन नजदीक से कर पाऊँ? कोई संभावना न देख मैंने अपने गुरु से प्रार्थना की कि मुझे श्री स्वामीजी के दर्शन पास से करा दें।' प्रार्थना के बाद जैसे ही मैंने आँखें खोलीं तो स्वामी निरंजन को सामने खड़े देखा। प्रणाम निवेदित कर मैंने उनसे दर्शन कराने का अनुरोध किया। मुझे आश्चर्य में डालते हुए स्वामी निरंजन कहते हैं कि मैं तो आपको इसी के लिए लेने आया हूँ। हम उठे और उनके पीछे-पीछे चल दिये।

अब मेरे आश्चर्यचकित होने की बारी थी कि यह सब कैसे घटित हो गया। मैंने स्वामीजी से कुछ कहा नहीं, यहाँ तक कि उनसे नीना और दीदी का परिचय तक नहीं करा पाया। फिर भी स्वामीजी उनसे मिल लेते हैं और श्री स्वामीजी के दर्शन करा देते हैं। मेरे मन में योजना बनती ही रही और उधर वह सब घटित हो गया जो मैं चाहता था। आखिर यह कैसे संभव हुआ? कुछ देर तक मैं इसी सोच में डूबा रहा।

बाद में इस घटना पर कई बार चिन्तन किया। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि सन्तों-महात्माओं की महिमा अपार है। उनकी थाह पाना हमारे बस में नहीं है। ये सन्त-महात्मा और विशेषकर हमारे श्री स्वामीजी और स्वामी निरंजन क्या नहीं कर सकते! वे कब और किस रूप में कृपा कर दें, यह केवल वे स्वयं ही जानते हैं। हम तीनों उनकी कृपा के पात्र बने, हमारे लिये यही जीवन की उपलब्धि है।

अभयदान

सन् 2003 में चैत्र नवरात्रि में भाग लेकर हम मुंगेर पहुँचे। रिखिया में स्वामीजी के श्रीमुख से मेरे लिए कुछ ऐसे शब्द निकले थे, जिन्हें सुनकर मैं स्तंभित रह गया था। मुंगेर आकर स्वामीजी से मिलने का समय माँगा। स्वामीजी ने पहले ही दिन मुझे बुला लिया। स्पष्टीकरण माँगे जाने पर मैंने कहा, 'दूसरे लोग क्या कह रहे हैं, इस पर मैं कोई टिप्पणी नहीं करना चाहूँगा, किन्तु जो मैं कह रहा हूँ वह शत-प्रतिशत सत्य है।' स्वामीजी ने कहा, 'ठीक है। अब यह बात यहीं समाप्त हो गई।' मैंने कहा, 'मेरी ओर से बात यहाँ समाप्त नहीं हुई है। मुझे आप से कुछ कहना है। मैं आप से स्पष्ट रूप से कह रहा हूँ कि मैं आपकी नाराजगी नहीं झेल सकता। मैं आप को नाराज देखने के पहले मर जाना चाहूँगा या कहूँ मर ही जाऊँगा।'

स्वामीजी बोले, 'आप ऐसा कोई काम ही नहीं करते, जिससे मैं नाराज होऊँ।' मैंने जोड़ा, 'गलतियाँ तो मुझसे होंगी। मैं आपको ऐसी कोई गारंटी नहीं दे सकता कि मैं गलती नहीं करूँगा। गलती करूँ तो सजा दीजिये। परंतु मन में मत रखिये, नाराज मत होइये।' स्वामीजी ने कहा, 'अच्छा! मैं अब आप से कभी नाराज नहीं होऊँगा।' मैं यह अभयदान पाकर प्रसन्न हुआ।



मैं कुछ देर बैठा रहा और फिर मैंने कहा, 'आपने जो सेवा कार्य मुझे दिया है, मैं उसे सामर्थ्य भर निभा रहा हूँ और उससे स्वयं सन्तुष्ट हूँ। गेरू वस्त्रों को मैं सेवा का प्रतिरूप ही समझता आया हूँ। पूर्ण संन्यास को मैं प्रमोशन के रूप में नहीं देखता हूँ। फिर भी आपकी जानकारी के लिए मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि यदि आप चाहें तो मैं पूर्ण संन्यास के लिए तैयार हूँ।' स्वामीजी ने कहा, 'आप किसी

से कम नहीं हैं।' मैंने कहा, 'यहाँ कम या अधिक की बात कहाँ से आ गई? मेरा किसी से कुछ लेना-देना नहीं है। मेरा सम्बन्ध मात्र आपसे है। बाकी लोगों के साथ जहाँ तक मेरे सम्बन्ध का प्रश्न है, तो उसका आधार आपका उनसे सम्बन्ध है।' 'निश्चित रूप से आप ही जानते हैं कि मेरी क्या आवश्यकता है। आज के बाद मैं आपसे इस विषय पर कभी चर्चा नहीं करूँगा। हाँ! मैं आपको प्रस्तावित कर चुका हूँ, इसलिए आप जब चाहें, मुझे बुलाकर पूर्ण संन्यास में दीक्षित कर सकते हैं।'

इस पूरी बातचीत पर बाद में चिन्तन किया तो मुझे अपने आप पर तरस आया। मैं अपने शिव स्वरूप स्वामीजी से कैसे और क्यों यह सब बोल लेता हूँ। फिर सोचता हूँ कि उनके सामने बैठकर क्या कोई ऐसा कुछ भी बोल सकता है, जिसे वे न चाहें। वही प्रेरित करते हैं तभी मैं बोलता हूँ, वरना मेरी क्या बिसात है?

अब मैं संन्यासी आत्माभिषेक से स्वामी आत्माभिषेक बन जाने की कहानी लिखना चाहूँगा। सन् 2008 के शतचण्डी यज्ञ और योग पूर्णिमा महोत्सवों में भाग लेकर अधिकतर भक्तगण और स्वामी निरंजन भी रिखिया से मुंगेर आ गये।

गंगादर्शन आने पर परिचय पत्र मिला, उसमें लिखा था, 'स्वामी आत्माभिषेक'। मैं थोड़ा चौंका, सोचा कि यह गलती से लिखा गया होगा। बाद में घोषित हुआ कि अगले दिन से सभी के लिए योग प्रशिक्षण होगा। कक्षा का संचालन कौन करेगा, यह नहीं बताया गया था। मुझे अगले दिन से ही 8 बजे से एक विशिष्ट व्यक्ति की कक्षा लेने का आदेश मिला था। जब मैं कक्षा ले रहा था तब मैंने हॉल से आ रही ध्वनि सुनी, मैंने पहचान लिया कि यह स्वामीजी की आवाज है। मैंने तुरन्त स्वयं ही निर्णय लिया कि कल से मैं 8.30 बजे कक्षा लूँगा। उसी दिन बाद में कुटीर के पास स्वामीजी के दर्शन हुए तो वे तुरन्त पूछते हैं, 'आप आज कक्षा में नहीं थे?' मैंने वस्तुस्थिति से उन्हें अवगत कराया और कहा, 'कल से मैं अवश्य आऊँगा।'

अगले दिन प्रशिक्षण आरम्भ करने से पहले स्वामीजी ने स्वामी कैवल्यानन्द और 'स्वामी आत्माभिषेक' को मंच पर बुलाया और आसनों के प्रदर्शन के लिए मुझे अपनी दायीं ओर बैठाया। स्वामीजी की बगल में बैठ कर आसनों का प्रदर्शन करने का अवसर पाना और प्रदर्शन कर पाना, दोनों ही उपलब्धियाँ बन गईं। साथ ही स्वामी आत्माभिषेक सम्बोधन सुन कर मैं

चौंका था, फिर सोचा कि यों ही स्वामीजी के श्रीमुख से यह शब्द निकल गया होगा। अगले दिन सबके साथ जब मैं आसन कर रहा था तो दो बार स्वामीजी ने घोषित किया कि स्वामी आत्माभिषेक का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ है। उस कक्षा में सभी भारतीय और विदेशी वरिष्ठ स्वामी उपस्थित थे। यहाँ भी अपने लिये स्वामी सम्बोधन सुनकर मैं सतर्क हुआ, फिर सोचा कि बार-बार इस शब्द का प्रयोग किया जाना यों ही नहीं हो सकता। कुछ बात जरूर है।

इसी विषय से जुड़ी एक कड़ी और है। 2009 योग पूर्णिमा के सुअवसर पर दो ग्रन्थों का प्रकाशन 'मैण्डेट एण्ड अकम्पलिशमेंट' के नाम से हुआ और प्रसाद रूप में मिला। उसे पढ़ने पर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि मेरा नाम उसमें कई स्थानों पर छपा है, किन्तु थोड़े परिवर्तन के साथ। वह परिवर्तन था, संन्यासी आत्माभिषेक के स्थान पर 'स्वामी आत्माभिषेक'। एक और घटना ने इसकी पुष्टि कर दी।

2009 की 5 दिसम्बर की मध्य रात्रि में श्री स्वामीजी महासमाधि में लीन हो गये और 6 दिसम्बर की सायं बेला में उन्हें रिखियापीठ में विधिवत् भू-समाधि दी गई थी; यह सर्वविदित है।

जनवरी 2010 में मैंने श्री स्वामीजी के बारे में तीन-चार संस्मरणात्मक लेख योगविद्या में प्रकाशनार्थ लिख कर दिये। उन लेखों में मेरा नाम 'स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती' छपा। मेरे नाम में यह परिवर्तन, अर्थात् संन्यासी से स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती, स्वामीजी के ही आदेश से ही हुआ होगा। इसे मैं उनका आशीर्वाद और कृपा ही मानता हूँ। सन् 2003 में स्वामीजी ने मुझसे कहा था, 'आपको पूर्ण संन्यास की आवश्यकता नहीं है। यह उसी की अन्तिम परिणति है कि बिना किसी औपचारिक दीक्षा के मुझे स्वामी घोषित कर दिया गया।

भुज से भीलवाड़ा – एक अविस्मरणीय यात्रा

2004 में भुज (गुजरात) में स्वामीजी के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा महोत्सव मनाये जाने का कार्यक्रम बना। भुज से स्वामीजी का भीलवाड़ा आश्रम भी आना तय हुआ।

मई में मैं भीलवाड़ा आश्रम गया तो वहाँ के प्रभारी ने मुझसे कहा कि आप भुज से स्वामीजी के साथ अजमेर पहुँचिए और वहाँ से फिर कार से भीलवाड़ा।



इण्डियन ऑयल कारपोरेशन की बड़ोदरा रिफाइनरी में वरिष्ठ अधिकारियों के लिये तीन दिवसीय पूर्णकालिक सत्र का संचालन कर मैं 1 जुलाई को भुज पहुँचा। गुरु-पूर्णिमा भव्य रूप से संपन्न हुई। उल्लेखनीय घटना हुई गुरु पूर्णिमा के दिन हवन करते समय। स्वामीजी शिवानंद गायत्री के साथ हवन कर रहे थे उसी समय ॐ का आकार हवन की लपटों से बना दिखा।

3 जुलाई को प्रात:कालीन कार्यक्रम के बाद हम रेलवे स्टेशन पहुँचे। स्वामीजी व्यस्तता के कारण समय से कुछ ही पहले पहुँचे। मैं अपने कोच में घुसा और 20 नम्बर की बर्थ के पास पहुँचा। वहाँ मैंने देखा कि दिल्ली की शान्तानंद और श्रीमूर्ति बीच में लगी टेबल पर फूल सजा रही हैं। मैंने कुछ आश्चर्य से पूछा, 'यह ट्रेन है, यहाँ यह सजावट?' उन्होंने कहा – 'यह 19 नम्बर स्वामीजी की बर्थ है इसलिए।' सुनते ही कुछ क्षणों के लिए मेरा मस्तिष्क सुन्न हो गया। यह क्या संयोग है? स्वामीजी की बर्थ 19 है और मेरी 20। मैंने अलग से टिकट खरीदा है। यह संयोग गुरु कृपा से ही बना है। मन-ही-मन स्वामीजी को प्रणाम किया।

कुछ देर बाद स्वामीजी आये और मुझे देखते ही पूछते हैं, 'आप यहाँ कैसे?' मुझसे पहले शंकरानंद जी कहते हैं, 'आत्माभिषेक आपके एस्कॉर्ट बन

कर भीलवाड़ा ले जाने के लिए आये हैं।' स्वामीजी सुनकर मुस्कुराये और तुरंत कहते हैं, 'हाँ, तो एस्कॉर्ट जी! मेरा नाश्ता कहाँ है?' मैंने कहा, 'स्वामीजी 11 बज चुके हैं।' यह नाश्ते का समय नहीं है। स्वामीजी ने कहा, 'लेकिन मैंने अभी तक नाश्ता नहीं किया है।' मैंने कहा, 'भुज के लोग कैसे हैं? आपको बिना नाश्ता कराये ही भेज दिया।' स्वामीजी कहते हैं, 'आप तो एस्कार्ट हैं, आपकी व्यवस्था कहाँ हैं?' मैंने मन में सोचा, बुरे फँसे। कहने को कुछ था नहीं।

इतने में देखता हूँ दिल्ली की स्वर्ण प्रकाश ठंढे दूध की बोतल लेकर आ गईं। स्वामीजी ने बोतलें देखीं और फिर मुझे देखा। मैंने आँखें नीची कर लीं। क्या करता? कुछ देर बाद वे प्लेट में समोसे रखकर ले आईं। स्वामीजी ने समोसों को देखा और फिर मुझे देखते हुए कहते हैं, 'एस्कॉर्ट आप हैं और खाने-पीने की व्यवस्था वहाँ से हो रही है।' मेरे पास आँखें झुकाने के अलावा कोई चारा नहीं था। कुछ देर बाद पास में रखे डिब्बे की ओर इशारा करते हुए स्वामीजी कहते हैं, 'इसमें नाश्ता है, इसे खोलिये।' मैं डब्बा खोलने ही लगा था कि स्वर्ण प्रकाश आईं और टेबल पर टेबल मैट बिछा दी। अब मेरे धैर्य का बाँध टूट चुका था। स्वामीजी की तिरछी निगाह मुझ पर पड़े उससे पहले ही मैं बोल पड़ा, 'माता जी! मैं आप के चरण छूता हूँ। आप कृपा कर अपनी सीट पर बैठिये। आप मेरी खटिया खड़ी करवाने पर क्यों तुली हुई हैं।' मेरी दयनीय बन चुकी स्थिति का सभी मजा ले रहे थे।' स्वामीजी ने नाश्ता किया। मुझे राहत मिली।



एस्कॉर्ट बनना और वह भी चलते-फिरते, आज मुझे बहुत मँहगा पड़ा। अब बचने का कोई रास्ता था नहीं। मेरी खिंचाई हो रही है, लेकिन संतोष और आनंद की बात है कि खिंचाई करने वाले मेरे अपने स्वामीजी ही हैं। उनका साथ मिल रहा है, वह इस खिंचाई पर बहुत भारी है।

भोजन के बाद, कार्यक्रम में व्यस्तता के कारण थके होने की वजह से स्वामीजी बर्थ पर लेटकर विश्राम करने लगे और सो गये। मैं फर्श पर चादर फैलाकर बैठ गया और उन्हें लगातार निहारता रहा। स्वामीजी को सोता हुआ देखना और वह भी इतने पास से, यह सौभाग्य पहली बार मिला था। मैं इस निकटता का भरपूर आनंद लिए जा रहा था। मन में भाव आया कि मैं यदि आज अपने भाग्य पर न इठलाऊँ तो भला कौन इठलायेगा।

स्वामीजी उठे। शाम की चाय हुई और फिर मेरी खिंचाई आरंभ हो गई। स्वामीजी को इस भाव में मैंने पहले कभी नहीं देखा था। मेरी खिंचाई और धुलाई करने के लिए वे मानो पूरी तैयारी के साथ बैठे थे। हँस-हँस कर सबका बुरा हाल था। खूबी यह रही कि निशाना मैं ही था और तीर चलाने वाले स्वामीजी। मैं रह-रह कर अपने भाग्य को ही सराहे जा रहा था। एक बात तो आज निर्विवाद रूप से समझ में आ गई है कि मैं स्वामीजी के हृदय के पास पहुँच गया हूँ। वे सचमुच मुझे प्यार करते हैं। मैंने ऐसा स्पष्ट रूप से अनुभव किया। लेकिन वे ऐसा क्यों करते हैं, मेरी समझ से परे है।

बीच में कोच में कोई विक्रेता दिखा तो स्वामीजी बच्चों जैसी जिज्ञासा के साथ पूछते हैं, 'आईसक्रीम है?' उसने कहा, 'नहीं, ट्रेन में नहीं मिलेगी। अगला बड़ा स्टेशन वीरमगाँव है, वहाँ मिल सकती है।' वीरमगाँव आने पर मैं तुरंत नीचे उतरा, प्लेटफार्म का चक्कर लगाया, आईसक्रीम नहीं मिली। शाम को अहमदाबाद पहुँचे। मैं उतरा और आईसक्रीम ले आया। भोजन हुआ और स्वामीजी के साथ हम सब ने आईसक्रीम खाई।

खा-पीकर मेरी खिंचाई का एक और दौर चला। अब बात उठी सोने की तो मैंने पहले घोषित कर दिया कि मैं स्वामीजी के ऊपर वाली बर्थ पर नहीं सोऊँगा। स्वामी शंकरानंद जी को बर्थ नहीं मिल सकी थी तो मैंने उनसे कहा कि आप 20 नम्बर की बर्थ ले लीजिये। मैं फ्लोर पर चादर बिछा कर सो जाऊँगा। इसी बीच एक विद्यार्थी ने बगल में आरक्षित अपनी बर्थ मुझे दे दी। सोने जाने के पहले मैंने स्वामीजी के चरण स्पर्श किये। प्रात: 5 बजे अजमेर में उतरना था। प्लेटफार्म पर भीलवाड़ा और अजमेर के भक्तगण उपस्थित थे। हम गाड़ियों से आराम होटल पहुँचे। नहाना-धोना हुआ। जब मैं अजमेर में था तब अधिकतर योग शिविर इसी होटल में आयोजित हुआ करते थे। तब भी और आज भी सारी व्यवस्था इसके मालिक दिनेश चंद्र अग्रवाल द्वारा नि:शुल्क की गई। नाश्ते के बाद गाड़ियों से हम भीलवाड़ा

के लिए चल दिये। अचानक गाड़ी रुकवाकर स्वामीजी सड़क के किनारे खड़े हो गये। हम सब रुके। स्वामीजी कल की कारगुजारियों को जारी रखने के उद्देश्य से कहते हैं, 'एस्कॉर्ट जी! चाय पीनी है।' मैंने बिना सोचे-समझे कि किससे बात कर रहा हूँ, उनसे कहा, 'चाय पीनी थी तो किसी होटल/ढाबा के पास रुकना चाहिए था। यहाँ मैं चाय कहाँ से लाऊँ?' मैंने सोचा था कि बात यहीं समाप्त हो जाएगी। लेकिन स्वामीजी तो स्वामीजी हैं, बोले, 'आप एस्कॉर्ट हैं, अजमेर से थर्मस में चाय लेकर आनी थी।' मैं निरुत्तर था, क्या बोलता! इतने में सड़क पार थोड़ी दूर एक छोटा-सा मन्दिर दिखा, वहाँ गया तो एक छोटी-सी दुकान भी दिखी। मैंने राहत की साँस ली। चाय पीकर हम फिर चल दिये।

मैं सोचने पर मजबूर था कि स्वामीजी मुझ पर कितना प्यार लुटाये जा रहे हैं। मेरी खिंचाई तो एक खेल है, एक माध्यम है, जिसके द्वारा वे अपना प्यार मुझ पर उड़ेले जा रहे हैं। आखिर इतनी कृपा मुझ पर क्यों?

हम सब भीलवाड़ा आश्रम पहुँचे, भक्तों ने स्वामीजी का स्वागत किया। गुरु कुटीर में रुद्राभिषेक चल रहा था, हम सब भी शामिल हुए।

6 जुलाई को हम स्वामीजी के साथ मेवाड़ क्षेत्र के चार प्रसिद्ध मंदिरों के दर्शन के लिए गाड़ियों से चल दिये। ये चार मंदिर थे, बहुचर्चित नाथद्वारा (कृष्ण), एक लिंग जी (शिव), द्वारकाधीश (कृष्ण) और महाभारतकालीन चार भुजा (विष्णु)।

दोपहर में एक भक्त के यहाँ भोजन की व्यवस्था थी। भोजन के बाद स्वामीजी कुछ भक्तों से बात करने लगे। मैं भोजनोपरांत नियत स्थान पर बैठ गया। स्वामीगण पहले से वहाँ बैठे थे और उनके हाथों में आईसक्रीम के कप थे। मुझे भी कप दिया गया। मैंने एक बार चखी भर थी कि स्वामीजी आये और ठीक मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गये। छूटते ही मुझसे पूछते हैं, यह क्या खा रहे हैं? मैंने कहा, 'आईसक्रीम।' अगला प्रश्न दागा, 'क्यों खा रहे हैं?' मुझे आश्चर्य हुआ कि ट्रेन में अपने से कहकर आईसक्रीम मँगवाई और सबके साथ खाई और दो दिन बाद ही आज यह प्रश्न। मैं असमंजस से उबरकर बोला, 'कोई सफाई नहीं देनी है, नहीं खाऊँगा।' स्वामीजी कहते हैं, 'सिर्फ आईसक्रीम नहीं छोड़नी है, आपको हर रूप में चीनी का त्याग करना होगा।' मैंने आदेश मानते हुए कहा, 'चलिए चीनी भी छोड़ दी।'

यह विचित्र चर्चा होते देख शंकरानंद जी व अन्य स्वामीगण कहने लगे, 'स्वामीजी तो मजाक कर रहे हैं; आप इसे गंभीरता से क्यों ले रहे हैं।' मैंने

उन्हें उत्तर दिया, 'यह गुरु और शिष्य के बीच की बात है। वे कह रहे हैं, मैं सुन रहा हूँ और समझ भी रहा हूँ। आप लोग मेहरबानी करके हमारे बीच मत आइये।' यह कह कर मैं सोचने लगा कि प्रसाद भी तो मीठा होता है, वह भी नहीं खा पाऊँगा, यह सोचकर मैंने इस नियम में थोड़ी ढील देने के विचार से पूछा, 'स्वामीजी! और प्रसाद?' इस पर वे तपाक् से बोले, 'आप वकील की तरह बचाव का रास्ता ढूँढ़ रहे हैं।' मैंने तुरंत कहा, 'चलिये, प्रसाद भी छोड़ा।' अब लगता है, प्रतिप्रश्न की संभावना समाप्त हो चुकी थी। बात समाप्त हुई और हम सब चल दिये।

शाम 4 बजे हम सब एक मार्बल फैक्ट्री पहुँचे। वहाँ चाय आई, मैंने लेने से मना किया। सब कहने लगे, 'स्वामीजी तो मजाक कर रहे थे, आप इतनी गंभीरता से क्यों ले रहे हैं?' मैंने कहा, 'मैंने जो कह दिया सो कह दिया; अब उसमें परिवर्तन नहीं हो सकता।' यह सुन कर स्वामीजी कहते हैं, 'मेरा टारगेट आप नहीं, कोई और था, मैंने केवल आपके कंधे का उपयोग किया था।' मैंने कहा, 'स्वामीजी! आपका निशाना चूका, टारगेट पर नहीं लगा, इसमें मेरी कोई भूमिका नहीं है। भले ही आपका निशाना टारगेट पर नहीं लगा, किन्तु मुझे तो लग ही गया न! आप निश्चिन्त रहें; मैं अपने संकल्प पर कायम हूँ।'

7 जुलाई को स्वामीजी मुंगेर के लिए चल दिये और मैं वापस नोएडा पहुँच गया। स्वामीजी के साथ भुज-अजमेर-भीलवाड़ा की यह यात्रा निश्चित रूप से मेरे लिए अविस्मरणीय रहेगी। इस यात्रा से मेरे आंतरिक जीवन में एक अध्याय जुड़ा है। स्वामीजी ने मुझ पर अपनी करुणा का, अपने तरीके से खुलकर प्रदर्शन किया। मैं धन्य हुआ।

नोएडा पहुँचकर मैंने इस बीच आए पत्रों को देखा। उनमें शिविरों के बारे में बिहार योग विद्यालय से लिखे हुए दो पत्र मिले। योग शिविर के बारे में अनुरोध प्राप्त होने पर मुंगेर से उस संस्था को पत्र लिखा जाता था और उसी पत्र की प्रति मुझे प्राप्त होती थी। यह क्रम पहले से चला आ रहा था, किन्तु इस बार पत्र का प्रारूप बिल्कुल बदला हुआ था। उसे पढ़कर मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मेरे बारे में ऐसा लिखा जा सकता है। उस पत्र के मुख्य अंश नीचे दे रहा हूँ –

'आपके योग शिविर के संचालन के लिए हमें अपने एक योग शिक्षक, संन्यासी आत्माभिषेक को भेजने में प्रसन्नता होगी। संन्यासी आत्माभिषेक वर्तमान में नोएडा में रह रहे हैं, किन्तु वे बिहार योग विद्यालय की ओर से योग



शिविरों के संचालन हेतु पूरे भारत में यात्राएँ करते हैं और बिहार योग परम्परा के एक अतिप्रतिष्ठित शिक्षक हैं।'

इस पत्र में उल्लेखनीय बातें थीं –

- यह आभास दिया गया कि मैं बिहार योग विद्यालय का ही हूँ, केवल रह नोएडा में रहा हूँ।
- बिहार योग विद्यालय की ओर से मैं पूरे भारत में योग शिविरों के संचालन के लिए जाता रहता हूँ।
- तीसरी बात, जिसे पढ़कर मैं आश्चर्य चकित रह गया, वह थी कि मैं बिहार योग परम्परा का एक अति प्रतिष्ठित शिक्षक हूँ।

इसे पढ़कर मेरी आँखें नम हो आयीं थीं। मैंने सोचा कि इतने अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से शब्दों का चयन आखिर कैसे किया गया है? और क्यों किया गया है? अन्त में यही निष्कर्ष निकाल पाया कि यह मेरे लिए स्वामीजी का प्रत्यक्ष आशीर्वाद है।

बाद में हुए कुछ अनुभवों के आधार पर मुझे ऐसा लगा कि एस्कॉर्ट के रूप में मेरी खान-पान की व्यवस्था में पूरी तरह विफल हो जाने की बात को

स्वामीजी ने गाँठ बाँध लिया है। जब भी खान-पान की बात चली और मैं उनके सामने पड़ा उन्होंने भरपूर खिंचाई की। कुछ घटनाएँ यहाँ दे रहा हूँ।

पहली घटना – 29 जून 2006 को मैं रायपुर पहुँचा था। एक दिन दोपहर के भोजन के बाद स्वामीजी ने मुझ से कहा, '27 जुलाई की रात को मैं फ्रांस से नई दिल्ली पहुँचूँगा। वहाँ से पूर्वा एक्सप्रेस से जसीडीह जाना है। आप भी मेरे साथ चलने का टिकट ले लीजिए।' मुझे लगा कि मेरी लाटरी ही खुल गई, मैं आनंद से भर गया। इतने में स्वामीजी कहते हैं, 'ट्रेन में खाने-पीने की व्यवस्था आवश्यक है और यह सब आपके बूते का नहीं, इसलिए माता जी को भी साथ ले चलिए।' मन-ही-मन मैं यह देखकर बहुत आनंदित हुआ कि स्वामीजी भुज यात्रा बिल्कुल भूले नहीं है।

29 जुलाई को स्वामीजी के साथ हम दोनों ने दिल्ली प्रस्थान किया। चार बर्थ वाले कक्ष में हम तीन ही रहे, देवयोग से कोई चौथा नहीं आया। एक अभूतपूर्व सौभाग्य और वह भी स्वामीजी द्वारा निर्धारित। विमलेश ने स्वामीजी को भोजन परोसा, उन्होंने तिरछी नजरों से मुझे देखा, मुस्कुराये और फिर प्रेम से भोजन किया। अन्त में इतना तो कह ही दिया, 'इसीलिए मैंने माता जी को साथ चलने के लिए कहा था, आपसे तो यह सब हो नहीं पाता।' तत्पश्चात् स्वामीजी विभिन्न विषयों पर चर्चा करते रहे।

यह एक और अविस्मरणीय यात्रा हो गई और वह भी अठारह घंटों तक स्वामीजी के साथ, बिना किसी व्यवधान के। स्वामीजी की अगाध कृपा में इस बार सहभागिता विमलेश की भी रही। हम धन्य हो गये।

दूसरी घटना – स्वामीजी की दस दिवसीय दक्षिण भारत यात्रा का शुभारंभ 12 फरवरी 2007 को होता है। इस यात्रा में स्वामीजी के साथ अधिकारिक अनुचर के रूप में आश्रम से केवल मैं जा रहा था, और कोई नहीं। ट्रेन में शाम का भोजन धर्मरक्षित लेकर आये और वे भागलपुर तक साथ भी गये।

धर्मरक्षित जैसे ही भोजन परोसने लगे, स्वामीजी को भुज यात्रा की याद हो आई और मेरी नाकामी की चर्चा रस ले लेकर उन्हें विस्तार से सुनाने लगे। बीच में आश्चर्यचकित धर्मरक्षित मेरी ओर मुड़े, मेरी सुनने के लिए, तो मैंने उनसे कहा, 'जब स्वामीजी स्वयं इतने प्रेम से सुना रहे हैं तो उन्हीं से सुनिये न! मुझे क्यों बीच में बोलने को कहते हैं?' और धर्मरक्षित ने पूरी कथा उन्हीं से सुनी। मैं स्वामीजी को निहारता रहा और निहारता रहा उनके चेहरे पर उभरे

बाल सुलभ भावों को। वे कितने प्रसन्न थे मेरी नाकामी की गाथा को दोहराकर! यह उनका प्यार दिखाने का अनूठा तरीका था।

तीसरी घटना – 22 मार्च 2007 को मैं कुछ अंतराल के बाद गंगा दर्शन पहुँचा। साथ में कुछ खाद्य सामग्री, जिसमें घर की बनी गुझियाँ भी थी, लेकर आया था। कुटीर के सामने स्वामीजी आये तो मैंने वह झोला उन्हें भेंट किया। उन्होंने अन्दर झाँका और टिप्पणी की, 'यह जरूर माता जी ने भिजवाया होगा, क्योंकि आप के बूते का तो यह सब है नहीं।' इसके बाद बगल में खड़े स्वामी शंकरानंद जी से मेरी ओर इशारा करते हुए कहते हैं, 'इनके पास केवल फकीरी है।' स्वामीजी की पहली टिप्पणी तो अपेक्षित थी, खाने-पीने की बात हो और मेरी नाकामी की चर्चा न हो, यह कैसे हो सकता है? किन्तु उनकी दूसरी टिप्पणी ने मुझे अंदर तक हिला दिया। मन-ही-मन मैंने कहा, 'हे भगवान! स्वामीजी आखिर मुझे कहाँ ले जाने पर तुले हैं। ऐसा लगता है मैं उनकी नजरों में मिट्‌टी का एक लौंदा मात्र हूँ। वे जब चाहे, जैसा चाहे मुझे आकार देकर प्रसन्न हो लेते हैं।' ईश्वर सदृश मेरे गुरु मुझ जैसे अतिसाधारण व्यक्ति में इतनी अधिक रुचि ले रहे हैं। इसी को जीवन की पूर्णता कह सकते हैं। मेरे पास शब्द नहीं हैं अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए।

चौथी घटना – वर्ष 2008 का झूलन-कार्यक्रम 16 अगस्त को सम्पन्न हुआ और 17 अगस्त को, स्वामीजी के आदेशानुसार, उनके साथ मुंगेर जाना था। प्रात: हम गाड़ी से जसीडीह के लिए चल दिए। गाड़ी चलते ही स्वामीजी ने पूछा, 'आप लोगों ने नाश्ता कर लिया?' मैंने उत्तर दिया, 'नाश्ता तैयार नहीं था, चाय पी ली है। हाँ, आपके लिए एक भक्त द्वारा दिया नाश्ता साथ में है।' इतना सुनना था कि स्वामीजी को भुज यात्रा की याद ताजी हो आयी। बोले, 'आपके बूते का तो कुछ है नहीं।'

मैंने अपने बचाव का निष्फल प्रयास किया। परिणाम अपेक्षित था, स्वामीजी की बात भला हल्की कैसे हो जाए! वे एक हथौड़ा-सा मारते हुए कहते हैं, 'पहली छाप अंतिम छाप होती है।' अब बोलता भी तो क्या? सोचा, इस समय जो भी बोलूँगा उसका प्रभाव नहीं होने वाला है। फिर भी मैंने एक भावपूर्ण बात कह डाली, 'मेरे किसी अच्छे काम के लिए न सही, मेरी मूढ़ता के कारण ही सही, आप मुझे याद तो करते रहते हैं। मेरे लिए यही सौभाग्य की बात है।' स्वामीजी ने अपना हृदय खोल कर कह डाला, 'ऐसी बात नहीं है। अच्छे कार्यों के लिए तो आपका नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाएगा।'



अब बोलने को बचा ही क्या था? स्वामीजी भी कुछ देर के लिए मौन हो गये। वे हर बार मुझे निरस्त्र कर चुप रहने पर बाध्य कर देते हैं। मुझे लगता है कि वे ऐसी प्रत्येक घटना के माध्यम से मुझे जताने का प्रयास कर रहे हैं कि मुझे पूरी तरह अपने में समाहित करके ही मानेंगे। इतना मैं भी समझ चुका हूँ कि मेरा जीवन पूरी तरह उनके अधीन है और रहेगा भी। मेरे चाहने या न चाहने से कुछ होने वाला नहीं है। मैं व्यर्थ में क्यों हाथ-पैर मारता फिरता हूँ? कहा भी है – *मन चीती होती नहीं, प्रभु चीती तत्काल।* दूसरे शब्दों में यही भाव है – *इन्सान लाख चाहे तो क्या होता है, होता वही है जो मंज़ूर-ए-खुदा होता है।* इन उक्तियों का अर्थ भी यही है न! अंतर केवल इतना है कि मेरे प्रभु या खुदा मेरे स्वामीजी हैं। मेरे प्राण उनके नियंत्रण में हैं, मेरी प्रत्येक श्वास पर उनकी नजर है, यह जानते-समझते हुए भी मेरी उठा-पटक जारी है।

रिखिया में झूलन और शिवानंद जन्मोत्सव, 2004

मैं विमलेश के साथ 22 अगस्त को रिखिया पहुँचा था। झूलन का कार्यक्रम 31 अगस्त तक था और शिवानंद जन्मोत्सव का कार्यक्रम 5 से 8 सितंबर तक

होना तय था। स्वामीजी मिले, मैंने उनसे निवेदित किया कि मैं सोचता हूँ, 1 सितंबर को मुंगेर जाकर 4 को लौट आऊँ। उन्होंने कहा, ठीक है। 31 अगस्त की शाम को मैं स्वामीजी को बताने गया कि मैं कल मुंगेर जा रहा हूँ। अचानक उन्होंने कहा, "आप मेरे साथ जायेंगे और मेरे ही साथ वापस आयेंगे।" मैंने तब तक ऐसा सोचा भी नहीं था कि कभी ऐसा अवसर भी मुझे मिलेगा। मैं बहुत आनंदित हुआ।

हम प्रात: गाड़ी से चल दिये। गाड़ी में बैठे-बैठे वे अपने काम निपटाते रहे। करीब डेढ़ घण्टे बाद उन्होंने कहा, 'आपका काम बहुत बढ़िया है।' मैं उनकी बात सुनने के लिए पूरी तरह सचेत नहीं था, इसलिए ठीक से समझ नहीं पाया। मैंने कहा, 'मैं समझा नहीं।' स्वामीजी थोड़ा पीछे मुड़कर फिर से कहते हैं, 'आपका काम बहुत बढ़िया है।' मैंने पूछा, 'क्या बढ़िया है? मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, आप क्या कह रहे हैं?' स्वामीजी के शब्द थे, 'जैसा आप कर रहे हैं, वैसा कोई नहीं कर रहा है।' मुझे उनके कथन का आशय समझ नहीं आ रहा था। सोचा, ऐसा भी क्या खास है मुझमें और मेरे काम में!

बाद में स्वामीजी को योग शिविरों के कुछ अनुभव बताये। वे सुनकर प्रसन्न हुए। कुछ देर बाद स्वामीजी फिर पूछते हैं, 'आपका घर नोएडा में कहाँ है?' मैंने कहा, 'नयी दिल्ली स्टेशन से करीब 25 किलोमीटर की दूरी पर है।' इस पर अचानक कहते हैं, 'मैं आपके घर आऊँगा कभी।' सुनकर मैं अवाक् रह गया। कुछ संभल कर कहा, 'मैं प्रतीक्षा करूँगा।'

मुंगेर पहुँचा और फिर तीन दिन बाद 4 सितंबर को स्वामीजी के साथ वापस रिखिया आया। उक्त विषय से जुड़ी एक घटना वर्ष 2005 की गुरु पूर्णिमा की है। भुवनेश्वर आश्रम में आयोजन था। मैं स्वामी स्वरूपानंद जी के आदेश पर एक माह पूर्व वहाँ पहुँच गया था। एक रात स्वामीजी सभी स्वामियों से चर्चा कर रहे थे। तभी पता चला कि स्वामीजी का 5 से 7 अगस्त, तीन दिन का दिल्ली का कार्यक्रम तय हो गया है। मैंने स्वामीजी से कहा, 'आप तीन दिन के लिए दिल्ली जा रहे हैं तो मैं चाहता हूँ कि आप मेरे घर आने की अपनी इच्छा पूरी कर लें।' इस पर स्वामीजी कहते हैं, 'देखो! देखो! आत्माभिषेक कैसे मुझे फँसाने की कोशिश कर रहे हैं।' मैंने स्पष्टीकरण देते हुए कहा, 'यह मुझ पर सरासर गलत आक्षेप है। क्या यह सही नहीं है कि आपने स्वयं मेरे घर आने की इच्छा जताई थी। यह सोचकर मैंने आपको कभी आमन्त्रित नहीं किया कि आपके पास समय ही कहाँ है! ऐसे में मैंने जो कहा, वह पूरी तरह

उचित है।' तब स्वामीजी कहते हैं, 'अभी नहीं हो पाएगा।' मैंने कहा, 'अच्छा है, आप मेरे घर न आयें । इसकी वजह से मुझे आपको बार-बार याद दिलाने का अवसर तो मिलता ही रहेगा।'

2005 में महगामा योग शिविर और स्वामीजी का सत्संग

27 जुलाई से 3 अगस्त तक महगामा (झारखण्ड) में एक योग शिविर प्रस्तावित था। जुलाई में ही भुवनेश्वर में आयोजित गुरु पूर्णिमा समारोह में भाग लेने और सेवा के लिये मैं विमलेश के साथ आया हुआ था। एक शाम स्टेज पर स्वामीजी सभी संन्यासियों को प्रसाद दे रहे थे, जब मैं लेने पहुँचा तो थोड़ा रुक कर स्वामीजी पूछते हैं, 'आप लालमटिया कब जा रहे हैं?' मैं यह नाम सुनकर चौंका, तो तुरन्त ही कहते हैं, 'महगामा कब जा रहे हैं?' मैंने उक्त तिथियाँ बता दीं। फिर उन्होंने एक रहस्यमय सूचना दी, 'मैं शिविर के दौरान एक दिन वहाँ आऊँगा।'

निर्धारित तिथि को मैं महगामा पहुँच गया। अगले दिन मैंने मुंगेर फोन कर जानना चाहा कि स्वामीजी महगामा कब आ रहे हैं। किन्तु जानकारी नहीं मिल पायी।

शिविर में शाम का सत्र रात्रि 8:30 तक चलता था। एक दिन रात 8 बजे इस्टर्न कोल फील्ड लिमिटेड के कार्यालय से एक व्यक्ति यह सूचित करने के लिये दौड़ा-दौड़ा आया कि स्वामी निरंजनानन्द कल प्रातः शिविर में पधार रहे हैं। वह कॉलोनी गेस्ट हाउस, जहाँ मैं ठहरा था और जिस सभागार में योग शिविर चल रहा था, सब ई.सी.एल. का ही था। उसी कॉलोनी में स्थित डी.ए.वी. स्कूल में भी योग का एक सत्र चल रहा था।

सूचना मिलते ही मैंने योग चर्चा बन्द की और स्वामीजी व बिहार योग विद्यालय के बारे में बोलना आरम्भ किया। उपस्थित लोगों से कहा कि कल प्रातः आप सब लोग अपने परिवार और पड़ोसियों सहित यहाँ पहुँचें। डी.ए.वी. स्कूल में सूचना भिजवाई कि जितने अधिक बच्चे आ सकें, आयें। मेरा प्रयास था कि जब स्वामीजी आयें सभागार कुछ भरा दिखे, वहाँ के निवासियों को बिहार योग विद्यालय के बारे में बिल्कुल जानकारी नहीं थी। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि स्वामीजी ऐसी जगह और वह भी बिना बुलाये क्यों आ रहे हैं।

स्वामीजी प्रातः पधारे। सभागार में पहुँच गये। मैं स्वामीजी के दायीं ओर और मेरे सहयोगी स्वामीजी के बायीं ओर एक ही मंच पर बैठे थे।



मैंने उन अनजान लोगों को स्वामीजी का परिचय दिया और फिर स्वामीजी ने अपना उद्‌बोधन आरम्भ किया। उन्होंने जीवन और योग से जुड़े लगभग हर विषय पर जानकारी दी। एक घंटा हुआ, मुझे लगा, इतना काफी है। डेढ़ घंटा हुआ, मुझे लगा अब तो बहुत हो गया। मैंने अपनी अल्प बुद्धि से अनुमान लगाया कि संभवत: स्वामीजी को समय का ख्याल नहीं है। उनके धाराप्रवाह बोलने में कुछ रुकावट पैदा करने के लिये बोतल से गिलास में पानी डाला और उनके सामने दायीं ओर रख दिया। घड़ी देखी, दो घंटे हो चुके थे। अब मैंने दूसरा उपक्रम किया – हारमोनियम नीचे से उठाकर उनके बायीं ओर रखा। वे मेरी हरकतों को

एक नज़र से देख रहे थे और बोले भी जा रहे थे। अब मेरे पास करने को कुछ और नहीं था। ढाई घंटा बोलने के बाद स्वामीजी ने अपनी वाणी को विराम दिया। फिर कीर्तन, समापन और गंगा दर्शन से मंगाए साहित्य का वितरण हुआ।

मैंने स्वामीजी के अनेक सत्संगों को सुना है। मेरी याद में स्वामीजी ने लगातार ढाई घंटे कभी प्रवचन नहीं दिया है। और वह भी बिल्कुल अनजान लोगों के सामने। कुछ विश्राम के बाद वे रिखिया चले गये।

यह शिविर मेरे लिये अविस्मरणीय हो गया, विशेष रूप से इसलिये कि यह मेरा पहला और अन्तिम योग शिविर है, जिसमें स्वामीजी पधारे और वह भी बिना किसी आमन्त्रण के। भगवान और गुरु की लीला वही जानते हैं। वे कब, क्या और क्यों करते हैं, हम जैसों को समझ में आने वाला नहीं है, हमें समझने का प्रयास भी नहीं करना चाहिये।

चैत्र नवरात्रि, 2006 में स्वामीजी द्वारा मुझे रायपुर पहुँचने के आदेश का निहितार्थ

नवरात्रि के शुभ अवसर पर मैं रिखिया गया हुआ था। 7 अप्रैल को समापन था। मैंने स्वामीजी के चरण स्पर्श कर नोएडा जाने की आज्ञा माँगी। मेरी बात सुनते ही स्वामीजी पूछते हैं – आप रायपुर कब पहुँच रहे हैं? मैंने उत्तर दिया – रायपुर जाने का तो कोई कार्यक्रम मैंने नहीं बनाया है, किन्तु गुरु पूर्णिमा के अवसर पर राजनाँदगाँव अवश्य जाऊँगा। इस पर स्वामीजी निर्देश देते हुए कहते हैं – आपको रायपुर भी जाना है। आप 25 जून को रायपुर पहुँच जाइये। मैंने कहा – मैं रायपुर पहुँच जाऊँगा, किन्तु 25 जून को पहुँच कर क्या करूँगा? सुना है आप 30 जून को रायपुर पहुँच रहे हैं! इस पर स्वामीजी ने आदेश देते हुए कहा – आपको 25 जून को ही पहुँचना है। मैंने कहा, 'ठीक है।' और मैं नोएडा के लिए चल दिया।

मई माह में राष्ट्रीय खनिज विकास निगम के बैलाडीला लौह अयस्क परियोजना, डिपॉजिट नम्बर 5 के मुख्यालय बचेली, दंतेवाड़ा में योग शिविर होना तय था। मैं वहाँ गया और शिविर के समापन के बाद रायपुर आश्रम पहुँचा तथा वहाँ के आचार्य को स्वामीजी द्वारा मुझे दिये आदेश की सूचना देते हुए कहा कि मैं 25 जून को आ रहा हूँ। सुनकर उन्होंने कहा 'रायपुर में जो योग सम्मेलन हो रहा है, वह स्थानीय लोगों के लिए ही है। यहाँ किसी बाहरी आदमी को नहीं आना है।' आप स्वामीजी से फोन पर एक बार और आदेश माँगिये।' मैंने कहा, 'ठीक है।'

नोएडा पहुँच कर मैंने स्वामीजी से फोन पर बात की। उन्होंने कहा 'वे समझ नहीं रहे हैं कि मैं आपको वहाँ क्यों भेज रहा हूँ। आप 25 जून को ही रायपुर पहुँचेंगे।' मैंने तुरंत रायपुर आश्रम के प्रभारी को सूचित किया, तब वे बोले, 'ठीक है, आप आ जाइए।'

इस प्रकार, इतने पापड़ बेलने के बाद मैं 25 जून को रायपुर आश्रम पहुँच गया। वहाँ के प्रभारी ने मुझे सामने के ही एक कमरे में मशीन द्वारा योगनिद्रा के कैसेट्स की कॉपी करने का काम सौंप दिया। मैं मनोयोग से वह काम करता रहा। इस बीच रायपुर के भक्तगण, जिनका आना-जाना आश्रम में हो रहा था, मुझसे भी मिलते रहे, उनसे परिचय हुआ। 29 जून की शाम 3-4 भक्त आये और मुझसे पूछा कि क्या आप मुख्यमंत्री जी को, जिनका निवास सड़क के दूसरी ओर है, सम्मेलन का निमंत्रण पत्र देने जाने के लिए तैयार हैं? मैं उन लोगों के साथ मुख्यमंत्री जी से मिलने गया। बिना अधिक प्रतीक्षा किये हम मुख्यमंत्री के समक्ष पहुँच गये।

मैंने सविनय उन्हें निमंत्रण पत्र सौंपा और बिहार योग विद्यालय, श्री स्वामीजी तथा स्वामी निरंजनानंद जी के बारे में थोड़े विस्तार से बताया। उन्होंने सुना, किन्तु उनकी ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं आई। मैंने सोचा कि मैं इन्हें कैसे बात करने के लिए प्रेरित करूँ।

मैंने उन्हें पिछले वर्ष जगदलपुर में हुए सम्मेलन के दौरान, उनके द्वारा सम्मेलन के मंच से की गयी घोषणा की याद दिलायी और पूछा कि क्या इस विषय में कुछ प्रगति हुई है। उन्हें सुझाव दिया कि वे इस विषय पर अपने, अर्थात् राज्य सरकार के दृष्टिकोण को बनायें और हमें, अर्थात् बिहार योग विद्यालय को लिखें कि आप किस रूप में हमारी भागीदारी चाहते हैं। तब हम आपको समुचित सहयोग देंगे और फिर आगे की कार्यवाही आरंभ हो सकेगी। इस पर भी मुख्यमंत्री जी की कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी। मैंने सोचा कि अब इनकी चुप्पी कैसे तोड़ी जाए। और अचानक मन में एक विचार आया।

मैंने उनसे कहा, 'आप संभवत: बिहार योग विद्यालय को ठीक से आँक नहीं पा रहे हैं।' यह सुनकर उन्होंने मेरी ओर दृष्टि घुमायी। मैंने कहा, 'आप देश के वर्तमान राष्ट्रपति, डॉ.ए.पी.जे. अब्दुल कलाम को तो जानते ही होंगे।' अब वे गौर से मुझे सुनने लगे। मैंने आगे कहा, 'डॉ. कलाम एक वर्ष में दो बार बिहार योग विद्यालय आए हैं। यह एक ऐतिहासिक घटना है। बिहार योग विद्यालय में कुछ तो विशेष होगा कि देश के राष्ट्रपति दो बार, आठ माह के अंतराल में वहाँ गए हैं।'

मेरा इतना कहना था कि मुख्यमंत्री जी पूरी तरह से मुखातिब हो गये और मुझसे अनुरोध करने लगे कि उन्हें स्वामीजी से कैसे भी मिलवाने की व्यवस्था करूँ। मैंने उनसे कहा कि स्वामीजी मेरे गुरु हैं और गुरु अपनी मर्जी के मालिक होते हैं। लेकिन मैं आपको इतना आश्वासन अवश्य दे सकता हूँ कि जितनी मेरी सामर्थ्य है, मैं स्वामीजी से आपके लिए समय निकालने का अनुरोध भरपूर करूँगा और इसमें मैं सफल भी हो सकता हूँ। यह सुनकर वे कहते हैं, 'स्वामीजी, जहाँ चाहें, जिस दिन चाहें और जिस समय चाहें, मैं उनसे मिलने आ जाऊँगा।' वे बरामदे तक हमें छोड़ने आये और इस बीच कई बार अपना अनुरोध दुहराया। हम आश्रम वापस आ गये। आश्रम के प्रभारी ने मेरे साथ गये भक्तगणों से इस मुलाकात की जानकारी हासिल की और मुझसे कहा कि अब मुझे पता चला कि स्वामीजी ने आपको यहाँ क्यों भेजा है। आपने जो काम किया है वह और कोई नहीं कर सकता था।

अगले दिन स्वामीजी का सुखद आगमन हुआ। मैंने चरण-स्पर्श किये तो स्वामीजी मुस्कुराते हुए कहते हैं, 'सुना है, आपने रायपुर में तहलका मचा दिया है।' मुझे लगा कि संभवत: आश्रम प्रभारी ने स्वामीजी को पहले ही पूरी घटना से अवगत करा दिया है। मैंने निवेदन किया, 'स्वामीजी! मेरी क्या बिसात है कि कुछ कर सकूँ! यदि कुछ हुआ है तो आपने ही किया होगा।' और स्वामीजी मुस्कुराते हुए ऊपर कमरे में चले गए।

स्वामीजी से मिलने पर मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मुख्यमंत्री से मिलने का समय अवश्य निकालें, क्योंकि मुख्यमंत्री के आगे मेरी, अर्थात् बिहार योग विद्यालय की साख दाँव पर लगी है। स्वामीजी ने समय दिया और एक शाम मुख्यमंत्री जी, अपने पूरे सरकारी ताम-झाम के साथ स्वामीजी से मिलने आये। लगभग 40 मिनट तक दोनों में बातें हुईं।

बाद में इस पूरे घटनाक्रम पर चिन्तन किया तो एक तथ्य उभर कर सामने आया कि जो कुछ हुआ उसकी रूप-रेखा स्वामीजी ने 7 अप्रैल को ही निर्धारित कर दी थी, जब उन्होंने मुझे 25 जून को रायपुर पहुँचने का आदेश दिया था। उसी दिन उन्होंने तय कर लिया होगा कि मुझसे कब और क्या करवाना है।

मैं अपनी ओर से मुख्यमंत्री जी के बारे में इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि वे अति सरल व्यक्तित्व के धनी हैं। इतने सरल स्वभाव का व्यक्ति राजनेता ही नहीं, बल्कि सफल राजनेता हो यह एक सुखद आश्चर्य है।

आत्माभिषेक तुम्हारे साथ इतना क्यों घूमते हैं?

2006 में रिखिया में नवरात्रि अनुष्ठान के अंतिम दिन नवमी को भोज का आयोजन हुआ और तदुपरांत हम स्वामीजी के साथ मुंगेर के लिए चल दिये। रास्ते में स्वामीजी ने पहले सत्यानंद योग केंद्र, दिल्ली के बारे में श्री स्वामीजी द्वारा मेरे लिए दिये गए निर्देशों से अवगत कराया। कुछ देर बाद स्वामीजी कहते हैं, 'श्री स्वामीजी अभी मुझसे पूछ रहे थे कि आत्माभिषेक तुम्हारे साथ इतना क्यों घूमते हैं?' सुनकर मैं आत्मविभोर हो गया। प्रकट में इतना ही कह पाया, 'एक परमहंस दूसरे परमहंस से मेरी चर्चा करे, यह मेरे लिए कितना सौभाग्यपूर्ण है!' उस समय मैं भावों में बह गया। पूछ ही नहीं पाया कि स्वामीजी ने श्री स्वामीजी के प्रश्न का क्या जवाब दिया था। उनका उत्तर भी निश्चय ही गूढ़ रहा होगा।

बाद में चिन्तन किया कि श्री स्वामीजी ने ऐसा विचित्र प्रश्न आखिर किया ही क्यों? प्रश्न रहस्यमय तो है ही। उनके प्रश्न का निहितार्थ क्या हो सकता है? उनकी लीला वे ही जाने। उसी दिन स्वामीजी ने स्वयं मुझसे एक विचित्र प्रश्न किया, 'आपने गेरू पहना है, आप डरते क्यों हैं?' पहले तो प्रश्न सुनकर चौंका कि यह भी कोई प्रश्न है। फिर कुछ संभलकर मैंने उत्तर दिया, 'वास्तविकता तो यह है कि मैं डरता नहीं हूँ और इसे मैं अपनी एक कमजोरी के रूप में देखता हूँ। कारण है कि जहाँ कहीं मैं जाता हूँ, आपका प्रतिनिधि होकर ही जाता हूँ। इसलिए मुझे यह विचार सदैव रखना पड़ता है कि मेरे द्वारा कहीं कुछ ऐसा न हो जाय कि आप के सुनाम पर आँच आये। इसी कारण मुझे संकोच करना ही पड़ता है। इसे आप मेरा डरना मान सकते हैं। आज आपने यह प्रश्न कर मेरे उस संकोच को मिटा दिया है। अब भविष्य में आपको यह सुनने को नहीं मिलेगा कि मैं डरता हूँ।'

स्वामीजी के साथ दक्षिण भारत यात्रा

निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार मैं 12 फरवरी को मुंगेर पहुँचा। 13 को स्वामीजी के साथ रिखिया गया, वहाँ महाशिवरात्रि मनायी और 17 को हम वापस गंगादर्शन आ गए। मेरी दृष्टि से इस यात्रा की सबसे प्रमुख घटना रही कि केवल मैं स्वामीजी के सहायक सेवक के रूप में जा रहा था।

19 की शाम को चलकर प्रात: कोलकाता पहुँचे। गोयनका जी के यहाँ थोड़ा विश्राम कर हवाई अड्डे पहुँचे और 10 बजे चेन्नई आश्रम पहुँच गये। 20 को स्वामीजी की उपस्थिति में हवन हुआ। 22 की रात को ट्रेन से चल कर अगली सुबह बैंगलोर आश्रम पहुँचे। बहुत अच्छा लगा। मेरे मुँह से निकल गया, 'यह

आश्रम बहुत अच्छा है।' सुनकर स्वामीजी कहते हैं, 'क्या आप यहाँ रहना चाहते हैं?' मेरा उत्तर था, 'कोई वस्तु अच्छी लगे, इसका अर्थ यह नहीं कि मुझे वह वस्तु चाहिए ही।' सभी लोग हँस दिये, स्वामीजी भी हँस दिये।

एक दिन कार्यक्रम के लिए निकलते समय मुझे देखकर स्वामीजी कहते हैं, "आजकल आप 'इण्डोरियन' हो गये हैं।" और वे आगे बढ़ गये। मैंने यह समझने के लिए बहुत माथा-पच्ची की कि इसका क्या अर्थ है। अन्त में मैं यही निष्कर्ष निकाल पाया कि मैं स्वामीजी के साथ कम, कमरे में अधिक रहता हूँ। इसके पीछे कारण है मेरा संकोची स्वभाव। मुझे लगता है स्वामीजी के ज्यादा आगे-पीछे घूमने पर लोग क्या सोचेंगे। पर अब मुझे संकोच छोड़कर उनके साथ रहना होगा। चेन्नई में भी स्वामीजी ने संकेत देकर मुझे चेताया था, किन्तु मूढ़ जो ठहरा, समझ नहीं पाया।

मैंने उनकी छाया की तरह लगातार उनके साथ रहना आरंभ कर दिया। रात को उनके कमरे में जाता और तब तक वहाँ रहता जब तक कि वे सोने नहीं जाते। प्रात: उन्हें जगाने का काम मैं ही करता था।

बैंगलोर के बाद बस से चलकर 26 की दोपहर बाद शिमोगा पहुँचे। 28 की प्रात: बस से ही हम श्रृंगेरी मठ के लिए चल दिये। दोपहर को पहुँचे। मठ बहुत बड़े क्षेत्र में फैला है और प्राकृतिक वातावरण बहुत सुंदर है। बीच में एक छोटी-सी नदी भी है, नाम है तुंगभद्रा।

पूज्य शंकराचार्य जी के दर्शन हुए। उन्होंने बहुत प्यार से स्वामीजी से हम सब का परिचय प्राप्त किया । स्वामीजी के बारे में उन्होंने कहा, 'स्वामी निरंजन हमारे प्रेमास्पद हैं।' उन्होंने स्मरण की अपनी 1967 की मुंगेर यात्रा,



जब वे अपने गुरुदेव (तत्कालीन शंकराचार्य) के साथ श्री स्वामीजी से मिलने गये थे। उनकी और श्री स्वामीजी की अवस्था लगभग बराबर है।

मठ में पूजा में भाग लेकर और भोजन प्राप्त कर हम बस से चल दिये और मध्यरात्रि में बैंगलोर पहुँचे। प्रात: हवाई जहाज से चले और कोलकाता पहुँचे। गोयनका जी के यहाँ थोड़ा विश्राम और भोजन प्राप्त किया और जनशताब्दी एक्सप्रेस से चलकर लखीसराय उतरे। गाड़ियों से रात को ही गंगा दर्शन पहुँचे। इस बीच स्वामीजी अपने ढंग से अपना प्यार और कृपा मुझ पर लुटाते रहे।

वाई.पी.ओ. में स्वामीजी की वार्त्ता

'यंग प्रेसिडेण्ट ऑर्गेनाइजेशन' की ओर से बैंगलोर के होटल इष्ट में एक शाम स्वामीजी की वार्ता आयोजित की गयी। उसमें देशभर से तथा दक्षिण-पूर्वी और मध्य-पूर्वी देशों से भी करीब 200 की संख्या में युवा सी.ई.ओ. स्वामीजी को सुनने के लिए उपस्थित हुए थे।

उस वार्त्ता के समय स्वामीजी ने मुझे अपने निकट बायीं ओर बैठने का निर्देश दिया। मुझे लगा कि यह उनकी कुछ एक सर्वश्रेष्ठ वार्ताओं में एक थी।

मुझे बताया गया कि वाई.पी.ओ. में बीच-बीच में आध्यात्मिक या अन्य क्षेत्रों की प्रबुद्ध हस्तियों को वार्ता के लिए आमंत्रित करते रहने की परंपरा है। स्वामीजी से पहले पूज्य दलाई लामा वहाँ आये थे। वार्ता के बाद भाग



लेने वाले वार्ता पर अपना-अपना आंकलन-फीडबैक देते हैं। मुझे बताया गया कि 1 से 10 के पैमाने पर स्वामीजी का ग्रेड (औसत) था 10+, जबकि दलाईलामा जी का ग्रेड 10 था।

2007 में कुछ अतीन्द्रिय अनुभव

इन अनुभवों के पीछे भूमिका के रूप में थीं मेरी दायीं आँख की 4 शल्यक्रियाएँ। नेत्र विशेषज्ञ ने दायीं आँख में मोतियाबिन्द बढ़ा पाया और उसकी शल्यक्रिया कर दी। पट्टी खोलने पर उस आँख से मैं चार्ट में कुछ भी पढ़ नहीं सका। डॉक्टर घबराया और फिर उसने उसी अस्पताल के वरिष्ठ विशेषज्ञ के पास भेज दिया। उन्होंने जाँच के बाद बताया कि 'मैक्यूलर होल' है, और सलाह दी कि आप किसी डॉक्टर के चक्कर में मत पड़िये, नहीं तो आँख खो देंगे। आप सीधे एम्स जाइये और डॉ.अतुल कुमार से मिलिये। वे इस समय देश के सबसे प्रतिष्ठित रेटिना विशेषज्ञ हैं।

एम्स गया, डॉ. अतुल कुमार ने कुल 3 शल्यक्रियाएँ कीं। पहली दो शल्यक्रियाओं के बाद उन्होंने निर्देश दिया कि मैं 15 दिनों तक दिन में 18 घण्टे पेट के बल लेटा रहूँ। आरंभ में बहुत अटपटा लगा, किन्तु कुछ दिन बाद मुझे अच्छा लगने लगा। लगातार पूरे समय मैं अपने आप में रहता था और इस कारण मन तीव्र गति से अंतर्मुखी होने लगा। ऐसी स्थिति आ गई कि न मुझे आँख खोलने की इच्छा होती, न किसी से बात करने की। मैं अपने आप में आनन्दित रहने लगा। ये अनुभूतियाँ, दूसरी शल्यक्रिया के बाद अधिक तीव्र और गहन हो गईं। समयावधि पूरी होने पर जब मैं जप के लिए सिद्धासन में बैठता तो मूलाधार क्षेत्र में कुछ विचित्र सी हलचल अनुभव होती। बाद में मैंने सिद्धासन में बैठना बन्द कर दिया, पर यह क्या सुखासन में भी वही अनुभव! मैं जप छोड़ कर उठ जाता। फिर थोड़ी देर बाद जप पूरा करता।

मैं इसी मन:स्थिति में स्वामीजी के कहने पर शतचण्डी यज्ञ से एक माह पहले रिखिया पहुँच गया। वहाँ मुझे तपोवन के बड़े गेट पर सेवा मिली, गाड़ी आने-जाने पर दरवाजा खोलना-बन्द करना। एक कुर्सी दे दी गई बैठने के लिए।

जैसे ही बैठता, आँखें बन्द करने को मन करता और आँखें बन्द होते ही अनुभव होता कि मूलाधार को किसी ने ऊपर खींच लिया है। और उस अनुभव से हड़बड़ा कर मैं आँखें खोल देता। मैं सोचता, मैं यहाँ सेवा पर हूँ, ध्यान

लगाने नहीं बैठा हूँ। यह क्रम पूरे दिन जारी रहा, मेरी घबराहट बढ़ती गई कि मैं सेवा ठीक से नहीं कर पा रहा हूँ।

शाम को गेट बंद कर चाबी ऑफिस में जमा कर दी और स्वामीजी को उक्त अनुभव के बारे में एक छोटा-सा पत्र लिखा कि मैं कुछ समझ पाने की स्थिति में नहीं हूँ कि मुझे यह क्या हो रहा है और इस अनुभव को मैं पचा भी नहीं पा रहा हूँ। इतना मुझे पता है कि यह सब आपकी ही प्रेरणा से हो रहा है। मैं इस विषय पर आपसे बात करना चाहूँगा।

अचानक स्वामीजी आ गये, उन्हें वह पत्र थमा, मैं सामने पड़ी बैंच पर जाकर बैठ गया। स्वामीजी ने तुरन्त ही पत्र पढ़ा। अपना दायाँ हाथ उठाकर कहा – 'ठीक है, आपसे मिलूँगा।' मैं अपने निवास की ओर चल दिया ।

प्रात: उठा, जप में बैठा, कोई अनुभव नहीं। और उस दिन के बाद आज तक वैसा अनुभव कभी नहीं हुआ। यह सब क्या, कैसे और क्यों हुआ और कैसे बन्द हो गया? रहस्य है और बना भी रहेगा।

2008 में स्वामीजी का दिव्य दर्शन

13 मार्च को गंगा दर्शन से फोन आया कि स्वामीजी चाहते हैं आप 29 मार्च तक गंगादर्शन पहुँच जायें। मैंने कहा, 'जो आज्ञा। मैं 29 को पहुँच जाऊँगा।' उस समय तक मुझे एम्स में तीसरी शल्यक्रिया के लिये, जिसको 'एस.ओ. आर.' कहते हैं, 26 अप्रैल को भर्ती होने और 28 अप्रैल को शल्यक्रिया कराने का निर्देश मिल चुका था।

मैं गंगा दर्शन पहुँचा, अप्रैल में योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र के संचालन का दायित्व सौंपा गया। मन प्रसन्न था कि आश्रम में भी मैं सत्र का संचालन करने जा रहा हूँ। इस बीच स्वामीजी से कई बार मिला, उनसे बात करने की कोशिशें कीं। किन्तु वे यह कह कर टालते रहे कि अभी तो आप हैं, बाद में बात करेंगे। एक दिन ऐसा भी हुआ जब केवल मैं उनके पास था, फिर भी बात करने के मेरे अनुरोध को टाल दिया। मुझे थोड़ी चिढ़ सी हुई, सोचा, 'ठीक है, नहीं बात करते, न सही। मैं अब और बात करने की प्रार्थना न करके पत्र में वह सब लिख दूँगा, जो मैं उन्हें बताना चाहता हूँ।'

मैंने एक पत्र लिखा, जिसमें अपने द्वारा संपादित कार्यक्रमों की जानकारी और उक्त शल्यक्रिया के बारे में तिथियों सहित लिखा। संयोग से स्वामीजी से चलते-चलते भेंट हो गई। पत्र उन्हें थमा दिया और नोएडा के लिये चल दिया।



26 अप्रैल को 'डॉक्टर राजेन्द्र प्रसाद सेन्टर फॉर ऑप्थाल्मिक साइन्स' में भरती हुआ।' 28 को दायीं आँख को इन्जेक्शन लगा कर सुन्न कर दिया और ऑपरेशन थियेटर में ले जाकर ऑपरेशन टेबल पर लिटा दिया। मेरा सिर, आँखें सब ढक दिये। डॉ. अतुल कुमार, जो मेरी बगल में खड़े थे, उनकी आवाज मैंने सुनी, 'अब आपकी शल्यक्रिया शुरू होने जा रही है।'

अचानक मुझे लगा कि मैं अपनी दोनों आँखों से देख रहा हूँ और मेरे पैरों के पास मेरे स्वामीजी, अपनी चिरपरिचित मुस्कुराहट बिखेरते हुए खड़े हैं। वह दर्शन इतना वास्तविक था कि बुद्धि ने प्रश्न खड़ा कर दिया, 'स्वामीजी यहाँ ऑपरेशन थियेटर में कैसे आ गये? बाहरी व्यक्ति आ ही नहीं सकता।' फिर लगता है कि स्वामीजी तो सामने खड़े हैं; बुद्धि फिर कहती है कि वे अन्दर नहीं आ सकते। फिर सोचा कि मैं सपना तो नहीं देख रहा हूँ। बुद्धि ने तर्क दिया कि मैं सोया नहीं हूँ। मैं सब बातचीत सुन रहा हूँ। मेरी शल्यक्रिया की जा रही है, यह भी मैं जानता हूँ। यह सपना नहीं है। और फिर देखने लगता हूँ स्वामीजी, उसी मुद्रा में, जब तक मेरी शल्यक्रिया चली, सामने खड़े रहे और फिर अदृश्य हो गये।

कुछ समय बाद मैं ऑपरेशन थियेटर से बाहर आया। बाहर प्रतीक्षा कर रही विमलेश को देखते ही मैंने कहा, 'स्वामीजी अभी ऑपरेशन थियेटर में आये थे।' वे बोलीं कि आप हमेशा उनके बारे में सोचते रहते हैं, इसीलिये आपको ऐसा लगा होगा। स्वामीजी भला यहाँ क्यों आने लगे? मैंने कहा, 'नहीं! मैं बिल्कुल सच कह रहा हूँ। इसका प्रमाण मैं दिखाता हूँ।' यह कहते हुए मैंने मोबाइल फोन उठाया और स्वामीजी को एस.एम.एस. भेज दिया। उसमें लिखा था, 'आप अभी-अभी ऑपरेशन थियेटर में आये थे।' यह संदेश भेजकर मैं उनके द्वारा पुष्टि की प्रतीक्षा करने लगा।

दो दिन बाद अस्पताल से छुट्टी मिली, घर आ गया। लेकिन स्वामीजी का वह दिव्य दर्शन भूल नहीं पा रहा था। जब भी याद करता, शरीर में रोमांच हो उठता।

17 अगस्त 2008 को मैं स्वामीजी के साथ पाटलीपुत्र एक्सप्रेस से जसीडीह से किऊल जा रहा था। स्वामीजी कुछ देर शान्त बैठे तो मुझे उक्त घटना की याद आ गई। मैंने उनसे कहा, 'स्वामीजी! आप 28 अप्रैल को एम्स में ऑपरेशन थियेटर में आये थे।' अगले ही क्षण वे कहते हैं, 'हाँ, आपका एस.एम.एस. मिला था।' यह कह कर वे उठ खड़े हुए और बगल में बैठे एक भक्त की ओर इशारा कर कहते हैं, 'इन्हें सुनाइये।' और स्वयं कॉरीडोर में घूमने लगे। मैंने पूरी घटना सुना दी तो देखता हूँ कि वे आकर बैठ गये। आज मेरे विश्वास को बल मिला कि स्वामीजी उस दिन ऑपरेशन थियेटर में निश्चित रूप से आये थे। यदि ऐसा नहीं होता तो वे मुझे दूसरों को बताने का निर्देश कभी न देते। एक और तथ्य उभर कर सामने आया कि स्वामीजी स्वयं इस पर कुछ नहीं कहेंगे।

यदि यह दर्शन मेरे मन की उपज होता, तो मैं दुबारा भी कभी दर्शन कर लेता। किन्तु यह सत्य है कि आज तक मैं ऐसा दर्शन दुबारा नहीं कर पाया हूँ। यह एक दिव्य अतीन्द्रिय अनुभव था।

उसी दिन ट्रेन में ही जब हम लोग नाश्ता कर रहे थे, अचानक स्वामीजी बोल उठे, 'आज के दिन, इस समय, ये चार लोग, इस ट्रेन में बैठ कर यह नाश्ता करेंगे; यह सब पूर्व निर्धारित है। जीवन में कुछ भी संयोगवश घटित नहीं होता। सब कुछ पूर्वनिर्धारित है।' उनके श्रीमुख से अचानक निकले ये शब्द जीवन के रहस्य से पर्दा उठाते से लगे। मेरा-उनका यह साथ, मेरे प्रति की जा रही उनकी विभिन्न लीलायें – सब कुछ पूर्व निर्धारित ही तो है। इसका

अर्थ हुआ कि जो हो रहा है उसका कारण है, जिसे हम नहीं जानते और इसीलिये उसे रहस्य कहते हैं।

सबके सामने मेरा रोना और फिर अप्रतिहत शान्ति

9 मई 2009 पूर्णिमा का दिन, सुन्दरकाण्ड का पाठ सम्पन्न हुआ। मई के स्वास्थ्य रक्षा सत्र का संचालन मैं ही कर रहा था। पाठ के बाद स्वामीजी ने मुझे इशारे से बुलाया।

स्वास्थ्य रक्षा सत्र के प्रतिभागियों को सम्बोधित करते हुए वे कहना आरम्भ करते हैं, 'आपके शिक्षक स्वामी आत्माभिषेक बहुत अच्छे अनुभवी योग शिक्षक हैं। 30–40 वर्ष से योग से जुड़े हैं। ये सन्त नहीं हैं!' सिद्ध नहीं हैं, किन्तु योगी हैं। योग को इन्होंने आत्मसात् किया है, योग को इन्होंने जीया है।' मेरे धैर्य का बाँध टूट गया। इतने अतिश्योक्तिपूर्ण शब्दों में अपना गुणगान और वह भी स्वामीजी के श्री मुख से और वह भी सबके सामने! मेरी आँखों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगे। मैं इतना विह्वल हो रोने लगा कि बाद में उन्होंने क्या कहा, मैंने कुछ नहीं सुना। सामने बैठे लोग भौचक्के हो यह दृश्य देख रहे होंगे कि एक बूढ़ा व्यक्ति सार्वजनिक रूप से रोये जा रहा है। इसी बीच स्वामीजी के कोमल हाथ का स्पर्श अपनी पीठ पर अनुभव किया। मैंने उनकी ओर देखने का प्रयास किया और उनके चरणों पर, अशक्त हो, गिर पड़ा। उनके हाथ का कोमल स्पर्श दो बार फिर अपनी पीठ पर अनुभव किया। वे कह रहे थे, 'बहुत तारीफ कर दी, इसलिये पैर छू रहे हैं!' इसे कहते हैं 'जले पर नमक छिड़कना।' बस, फिर क्या था। मेरा रहा-सहा धैर्य भी छूटता सा लगा। आँसुओं की तो बाढ़ ही आ गई। सिर ऊपर उठाया, बोलने की कोशिश की, शब्द फूटे ही नहीं। कुछ क्षण बाद मैं फिर चरणों में गिर गया और रोता रहा।

कार्यक्रम समाप्त हुआ। खोया-खोया सा मैं उठा। शेष पूरा दिन मैं खोया-खोया ही रहा। एक अजीब मनोस्थिति बन गई थी। कमरे में पहुँचा, दिन में हुई घटना पर चिन्तन करते-करते उदास मन से सो गया। प्रात: नित्य की तरह 3 बजे उठा, फिर सोचा आज रविवार है, कक्षा नहीं है। तीनों मन्त्रों का पाठ किया और फिर याद आई कल की घटना। फिर वही प्रश्न मन को मथने लगा कि स्वामीजी ने आज ऐसा क्यों किया। मेरे मन में प्रश्न उठ रहा था कि स्वामीजी ने सार्वजनिक रूप से मेरी प्रशंसा क्यों की। मैं एक साधारण-सा शिष्य और सेवक भर हूँ। आखिर क्यों? यह सोचते-सोचते फिर रोना शुरू।



लगभग चार साढ़े चार तक मैं रोता रहा। इसी बीच अचानक एक विचार मन में कौंधा कि स्वामीजी मेरे जीवनदाता हैं, और जीवनदाता को पिता कहते हैं। जगत् को पैदा करने वाले को जगत् पिता या परमपिता कहते हैं, उसी आधार पर स्वामीजी भी मेरे पिता हैं। यह विचार मन में आते ही मेरी सारी उदासी दूर हो गई। आँसू, गायब हो गए। मन उमंग से भर गया। सोचा, यह सम्बन्ध तो पहले से ही था, मैं ही भुला बैठा था।

जब तक मैं स्वामीजी को गुरु और अपने को एक अदना-सा शिष्य/सेवक समझता रहा; तब तक स्वामीजी के क्रिया-कलाप, यथा मेरी भारी-भरकम शब्दों में प्रशंसा मैं पचा नहीं पा रहा था। किन्तु पिता-पुत्र का सम्बन्ध उजागर होते ही सब कुछ ठीक हो गया। पिता का अपने पुत्र से विशेष लगाव होना, उसकी प्रशंसा करना पूरी तरह स्वाभाविक है। इस नये सम्बन्ध की खोज ने परिदृश्य पूरी तरह बदल दिया है। स्वामीजी द्वारा मेरे प्रति किये गये सभी कार्य अब युक्तिसंगत लगने लगे हैं। नित्य कर्म से निवृत्त हो, गुरु मन्त्र का जप किया। नाश्ता किया और स्वामीजी को एक पत्र लिखने बैठ गया।

कल प्रात: से जिस दौर से मैं गुजरा था, मुझ पर क्या-क्या बीती, सब लिख डाला। पहले प्रश्न उठाये और फिर जो समाधान प्रकट हुआ, लिखा।

समाधान पर चिन्तन किया तो लगा हो न हो, ब्रह्ममुहूर्त्त में बह रहे आँसू स्वामीजी से देखे नहीं गये होंगे और तब उन्होंने वह विचार मुझे सम्प्रेषित किया होगा, जिससे मन खिल उठा।

कुछ दिन उनका संकेत या आदेश पाने के लिये प्रतीक्षारत रहा। निराश हो, फिर एक पत्र लिखा। उन्हें याद दिलाया कि मैं आपका पुत्र हूँ और पुत्र के रूप में मेरे कुछ अधिकार हो गये हैं, जो शिष्य के रूप में नगण्य थे। शिष्य के केवल कर्त्तव्य होते हैं, अधिकारों के बारे में शिष्य को कभी सोचना भी नहीं चाहिये। लेकिन पुत्र की बात अलग है। यह भी लिख दिया कि पिता के कक्ष में पुत्र को बिना अनुमति के भी प्रवेश का अधिकार है। आपकी व्यवस्था में जो लोग लगे हैं, उन्हें समझा दीजिये कि वे मेरे और आपके बीच में न आयें।

इस पत्र का भी वही अंजाम हुआ। स्वामीजी की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं। मैं अधीर हो उठा। सोचा, आज आर-पार की लड़ाई होकर रहेगी।

स्वामीजी चातुर्मासिक सत्र के विद्यार्थियों के साथ फोटो खिंचवा कर ऊपर आने के लिये सीढ़ियाँ चढ़ने ही जा रहे थे कि मैंने उनके सामने पहुँचकर सीधा प्रश्न दागा, 'आप मुझे लगातार अनदेखा किये जा रहे हैं?' उन्होंने अनसुना कर दिया। मैंने दोहराया, 'आप मुझे लगातार अनदेखा किये जा रहे हैं?' इस बीच उन्होंने अपने दाएँ हाथ में मेरा बायाँ हाथ पकड़ लिया, जिसके कारण मैं उनकी दायीं ओर आ गया और उनके साथ सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। वे मुस्कराते हुए कहते हैं, 'आप पूछते क्या हैं? आपने तो लिख ही दिया है।' मैं चला था उनसे लड़ने और यह क्या! उनके एक ही साधारण से वार से मैं चारों खाने चित्त पड़ गया। अब बोलूँ तो क्या बोलूँ? अपने को थोड़ा संभालते हुए बोला, 'तो आपको यह सम्बन्ध स्वीकार्य है। मैं अभी जाकर अम्माजी को बताने वाला हूँ कि मैं उनका पोता हूँ।' और वे मुस्कराते हुए चल दिये।

अब मेरे पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। मैं इस आनन्द को पचा नहीं पा रहा था। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मैं चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को बताना चाह रहा था कि स्वामीजी ने मुझे अपना पुत्र मान लिया है।

मैंने कुछ समय बाद इस पूरे प्रकरण पर चिन्तन किया तो एक बात समझ में आई कि सारा नाटक स्वामीजी का रचा हुआ था। नाटक के इस मोड़ पर वे मुझे जहाँ पहुँचाना चाहते थे, पहुँचा कर अपने कक्ष में चल दिये, अपनी चिर-परिचित सहज-सरल मुद्रा में।

चातुर्मासिक सत्र का समापन समारोह था। संयोग से मुझे अम्माजी के पास बैठाया गया। मैं उनके और पास खिसक गया, जैसे कोई बच्चा अपनी दादी से लिपट जाता है। मैंने उनसे कहा, 'मैं आपका पोता हूँ। आप मेरी दादी हैं।' उन्होंने पूछा, 'कैसे?' मैंने कहा, 'यह आप अपने बेटे से पूछिये।' वे सुन कर बहुत प्रसन्न हुईं ।

20 मई की शाम को मैंने स्वामीजी के पास जाकर पूछा, 'कब और कहाँ? मैं परसों प्रात: नोएडा के लिये निकलूँगा।' उत्तर मिला, 'कल सुबह 7 बजे।'

मैं बहुत प्रसन्न था कि कल स्वामीजी से मिलूँगा। अगली प्रात: मैं पौने सात बजे ही श्रीनिवास के बाहर पहुँच गया। कुछ देर में मैं स्वामीजी के सामने था। वे भूमि पर आसन पर बैठ कर कुछ काम देख रहे थे। मैंने चरण स्पर्श किये और पास ही बैठ गया। कुछ देर अपनी बातें कहीं। वे सुनते रहे और मुस्कराते रहे। मैंने अन्त में कहा, 'आपका बेटा ही क्यों न हो, इस प्रकार प्रशंसा करने से तो वह भी बिगड़ सकता है। भविष्य में आप ऐसा नहीं करेंगे।' स्वामीजी कहते हैं, 'ठीक है, नहीं करूँगा।' फिर अस्पताल में उनके प्रकट होने की बात उठाई। स्वामीजी ने कहा, 'यह मानसिक सृष्टि है।' मैंने कहा, 'यह सत्य नहीं है। आप वास्तव में उस दिन वहाँ आये थे। यदि यह मेरी सृष्टि होती तो मैं दुबारा भी तो आपको देख सकता था। किन्तु मैं आज तक नहीं देख पाया हूँ। सत्य क्या है, मुझे मालूम है। मैं केवल आपके श्री मुख से सुनना चाहता हूँ।' तब स्वामीजी ने कहा, 'यह गुरु कृपा है।'

इसी क्रम में 1999 शतचण्डी यज्ञ के समय की घटना की याद दिलाते हुए पूछा, 'यह क्या है?' उन्होंने इस बार भी बहलाने की कोशिश की, किन्तु मेरे आग्रह पर उन्होंने इसे भी 'गुरु कृपा' स्वीकारा।

तत्पश्चात् मैंने 2007 शतचण्डी यज्ञ के पूर्व के अपने अनुभवों के बारे जानना चाहा कि यह क्या है। यहाँ भी उन्हें अन्त में स्वीकारना पड़ा कि यह भी 'गुरु कृपा' है। मैंने अपने जीवनदान का प्रकरण भी उठाया। उन्हें कहना पड़ा, 'यह भी गुरु कृपा है।' ये सारी स्वीकारोक्तियाँ उनकी ओर से सहज रूप से नहीं आयीं। स्वामीजी बहुत संकोची हैं। वे सीधे-सीधे कैसे कह दें कि वही मेरे जीवन में सारे गुल खिला रहे हैं। मेरे जीवन के कारक वही हैं।

मैं वास्तव में धन्य हुआ आज प्रत्यक्ष रूप से यह सुन कर कि मेरे गुरु, मेरे पिता मुझ पर एक के बाद एक कृपा पर कृपा बरसाये ही जा रहे हैं। और भावुक हो मैं पूछ बैठा, 'आप मुझे इतना प्यार क्यों करते हैं? क्या पूर्वजन्म का

मेरा आपसे कोई सम्बन्ध है, जिसका हिसाब चुकता करने में आप लगे हैं।' सुनते ही स्वामीजी कहते हैं, 'इसमें हिसाब चुकता करने की बात कहाँ है? यह क्रमिक रूप से चल रही प्रक्रिया है।' मैंने फिर पूछा, 'आखिर मुझ पर इतनी कृपा क्यों?' तब वे धीरे से उस रहस्य पर से पर्दा उठाते हुए कहते हैं, 'आप पूर्वजन्म में मेरे सखा थे।' मुझे मेरे सारे प्रश्नों के उत्तर मिल गये। उनका मेरे प्रति प्रेम अकारण नहीं है। मैं आज अत्यधिक धन्य हुआ। मेरा स्थान उनके चरणों में ही नहीं, उनके हृदय में भी सुरक्षित हैं।

स्वामीजी उठते हुए कहते हैं, 'टच् वुड! आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।' मैंने कहा, 'यह टोटका क्यों? मेरा स्वास्थ्य इसलिये अच्छा है कि आपने इस शरीर को जीवित रखा हुआ है। हाँ, आँखों की समस्या चल रही है। कोई गंभीर प्रारब्ध होगा, जो आपकी प्रत्यक्ष कृपा के बावजूद भोगना पड़ रहा है। लेकिन मुझे इसकी कोई चिन्ता नहीं है। काम चलाऊ दृष्टि है। यथेष्ट है।

चरण स्पर्श कर चल दिया। सोचता रहा, पता नहीं कितने पूर्व जन्मों से मैं सन्मार्ग पर चलने का प्रयास करता ही रहा होऊँगा और पता नहीं कितने जन्मों से मैं अपने प्राणाधार के सान्निध्य में न जाने कितने रूपों में रहता आया होऊँगा कि उनकी करुणा, कृपा और प्यार का पात्र इस जन्म में बन पाया हूँ। लगता है, लगता ही नहीं मुझे विश्वास हो चला है कि मेरे इस जन्म का उद्देश्य पूरा होने को ही है। मैं अपने प्राणाधार के प्राणों का अभिन्न अंग बन जाने को तत्पर हूँ। और वे मुझे आत्मसात् करने को भी उद्यत लगते हैं। यह किसी भी क्षण घटित हो सकता है।

श्री स्वामीजी का अन्तिम दर्शन

श्री स्वामीजी का प्रथम दर्शन मुझे विशेष परिस्थितियों में परमात्मा की विशेष कृपा के फलस्वरूप 1978 में प्राप्त हुआ, दीक्षा भी उसी क्षण मिल गई और मेरे जीवन में नया मोड़ आया। मैंने स्पष्ट रूप से अनुभव किया कि मेरा प्रत्येक दिन, पिछले दिन से बेहतर होता आया है और यह क्रम आज तक जारी है। यह उन्हीं श्री स्वामीजी की कृपा और करुणा का प्रताप है कि मुझे स्वामी निरंजनानन्द जी के दर्शन हुए, मैं उनके निकट गया कहना सटीक नहीं है, बल्कि स्वामीजी ने मुझे अपने निकट से निकटतर लाने की व्यवस्था की। मेरा जीवन धन्य हो गया और इस धन्यता में प्रति कुछ दिनों में एक नया अध्याय जुड़ता जा रहा है।



2009 में योग पूर्णिमा 2 दिसम्बर को मनाई गई। यह कार्यक्रम पिछले वर्ष 2008 में पहली बार आयोजित हुआ था, जिसमें मृत्युंजय परम शिव की पूजा, आराधना, अभिषेक होता है। पिछले वर्ष उन्होंने इस आयोजन पर अपने ही तरीके से एक टिप्पणी की थी कि मैं जाने की सोच रहा हूँ और लोग महामृत्युंजय का पाठ/हवन कर मुझे यहाँ बनाये रखने का प्रयास कर रहे हैं। उस समय हमने इसे बहुत हल्के से लिया था, क्योंकि हम में से कोई भी यह कतई सोचने को तैयार नहीं था कि श्री स्वामीजी वास्तव में इस भौतिक शरीर से जाने का संकेत दे रहे हैं।

मैं 2009 में 27 नवम्बर को रिखिया पहुँचा था। मुझे सन्देश भेजा गया कि इस बार मैं कार्यक्रम में भाग लूँ। मुझे घोर आश्चर्य हुआ, क्योंकि 1995 से, जब से रिखिया में कार्यक्रम आयोजित होने शुरू हुए हैं, मुझे प्रत्येक बार कोई न कोई सेवा का सुअवसर मिलता रहा है और मैं सदैव कार्यक्रम में अंश मात्र ही भाग लेता आया हूँ। इस बार यह नई बात क्यों? वैसे मैं मन-ही-मन यह आदेश पाकर प्रसन्न था कि इस बार श्री स्वामीजी के भरपूर दर्शन कर पाऊँगा और उन्हें सुन भी पाऊँगा। अब सोचता हूँ यह दूसरा संकेत था, क्योंकि यह दर्शन श्री स्वामीजी का अन्तिम दर्शन होने जा रहा था और मेरा सौभाग्य था कि इस बार मुझे भरपूर दर्शन हुए।

मैं 2 दिसम्बर को संन्यासियों के लिये निर्धारित क्षेत्र में प्रथम पंक्ति में बैठा था। अचानक तपोवन क्षेत्र में ऊर्जा के घनीभूत रूप, श्री स्वामीजी प्रकट हुए। वे हमारे सामने से यज्ञ मण्डप की ओर चलते दिखे। हमारे और श्री स्वामीजी के बीच स्वामी निरंजन चल रहे थे। फिर भी श्री स्वामीजी जब मेरे सामने से निकले तो उनकी दृष्टि मुझ पर पड़ी और क्षण-मात्र के लिये उनकी और मेरी दृष्टि मिलीं। मेरे लिये वह दिव्य क्षण था, क्योंकि इस प्रकार श्री स्वामीजी ने मुझे कभी नहीं देखा था। मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'मैं तो निहाल हो गया।' अब सोचता हूँ, यह उनकी ओर से तीसरा संकेत था।

मेरे मुँह से यह भी निकला कि श्री स्वामीजी कितने सुन्दर और स्वस्थ्य दिख रहे हैं। इन्हें कहीं मेरी नजर न लग जाए! अब समझ रहा हूँ कि यह उनकी ओर से मेरे लिये चौथा संकेत था।

यज्ञ मण्डप के आगे जाकर उन्होंने भक्तों का अभिवादन इस बार बिल्कुल अलग ढंग से, दोनों हाथ जोड़कर किया। वे सामान्य रूप से ऐसा नहीं करते हैं, यह उनकी ओर से पाँचवाँ संकेत था। पूर्व में उनका हाथ सदैव आशीर्वाद की मुद्रा में उठता रहा है, आज यह नया तरीका क्यों अपनाया है? मैंने उसी समय सोचा जरूर था; परन्तु यह निष्कर्ष कैसे निकालता कि वे इस बार हमेशा के लिये इस शरीर में सभी से विदा ले रहे हैं?

3 दिसम्बर को हम सब मुंगेर के लिये प्रस्थान कर गये। 6 दिसम्बर की प्रात: 4 बजे स्वामी तपोनिधि ने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया। खोलने के पहले मुझे लगा कि कुछ अप्रत्याशित घटित हुआ है, क्योंकि मध्यरात्रि में मैंने नींद टूटने पर मेन गेट खुलने और बन्द होने की आवाज सुनी थी। उसी क्षण मन में प्रश्न उठा था कि इतनी रात गये गेट क्यों खुला। उन्होंने सूचना दी कि रात 12 बजे के करीब श्री स्वामीजी महासमाधि में लीन हो गये हैं। स्वामीजी रिखिया के लिये प्रस्थान कर गये हैं। तब मुझे उत्तर मिला कि रात को मेन गेट क्यों खुला था। उन्होंने आगे कहा कि स्वामीजी का निर्देश है कि ज्योति मन्दिर में 5 बजे से मन्त्र एवं स्तोत्र पाठ आरम्भ कर दिया जाये। मैं ज्योति मन्दिर पहुँचा तो जरूर, किन्तु मैं अपने में नहीं था। ऊपर लिखे सभी संकेत बार-बार याद आते रहे। मुझे लगता है कि मुझ पर उनका यह विशेष अनुग्रह ही था कि अन्तिम दर्शन देने के समय उन्होंने मुझे कार्यक्रम में बैठाने की व्यवस्था की और चलते-चलते अपनी दिव्य दृष्टि डाल कर मुझे अपना अन्तिम विशेष आशीर्वाद भी दे दिया। अन्य भक्तों को भी ऐसे अनुभव हुए होंगे।

सभी आश्रमवासी गंभीर हो गए थे। हम जीवन में पहली बार गुरु के महाप्रयाण के बाद की स्थिति का सामना कर रहे थे। मेरा हृदय पक्ष तो प्रबल है ही। मैंने कुछ देर मन्त्र पाठ का प्रयास किया, जारी नहीं रख पाया। आँसुओं ने बहना शुरू कर दिया, जो कुछ भी बुद्धि-विवेक था, आँसुओं में सब बह गया। लगभग पूरे दिन मैं रोता रहा, न खाना न पानी। पता नहीं इतने आँसू कहाँ से निकले जा रहे थे? शाम 6 बजे, जब श्री स्वामीजी को रिखिया में विधिवत् भू-समाधि दे दी गई, तब मैंने पहली बार पानी पीया। रातभर ज्योति मन्दिर में ही रहा। प्रात: 5 बजे पाठ पूरा हुआ। मुझे बताया गया कि रिखिया जाने के लिए तैयार रहें। इस प्रकार मैंने भगवद् स्वरूप अपने गुरुदेव को अपनी श्रद्धांजलि दी। मेरे हृदय को सान्त्वना देने के लिये एक बहुत बड़ा आधार स्वामी निरंजन के रूप में मेरे सामने उपस्थित था। अब से श्री स्वामीजी, स्वामी निरंजन के माध्यम से हमारे जीवन को गति देते रहेंगे, यह विश्वास दृढ़तर हो गया है।

श्री स्वामीजी द्वारा मुझे दिया गया अन्तिम आशीर्वाद

रिखिया में नवरात्रि अनुष्ठान पूरा होने पर स्वामी निरंजन ने मुझे बुलाया और कहा, 'अभी मैं गुरुजी से विदा लेने गया तो वे मुझसे आपके बारे में पूछने लगे कि आत्माभिषेक के परिवार की क्या स्थिति है। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि आत्माभिषेक जी के तीन बच्चे हैं। तीनों बड़े हो गये हैं और अपनी-अपनी जगह पर अच्छा कार्य कर रहे हैं।' श्री स्वामीजी ने फिर पूछा, 'उनकी पत्नी?' स्वामीजी ने उन्हें बताया, 'वह बेटे के साथ नोएडा में हैं।' श्री स्वामीजी इसके बाद बोले, 'अब आत्माभिषेक को चाहिये कि मुंगेर को अपना मुख्यालय बना लें।' यह कह कर स्वामीजी मुझसे कहते हैं, 'श्री स्वामीजी का यह सन्देश आपको देना था, सो दे दिया।' मैं यह सब पूरे मनोयोग से सुने जा रहा था। मैंने कहा, 'आपका आशीर्वाद तो था ही, आज श्री स्वामीजी का आशीर्वाद भी मिल गया। अब उनके इस आदेश का पालन करने के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है। वे मेरे बारे में इतना सोचते हैं, यह जानकर मैं धन्य हुआ।'

एक बात मैंने नोट की कि श्री स्वामीजी मुझसे सीधे कभी कुछ नहीं कहते थे, मेरे बारे में जो कहना होता, वे स्वामीजी से ही कहते थे और फिर स्वामीजी मुझे सुनाते थे।



इस आशीर्वाद, निर्देश, आदेश के माध्यम से श्री स्वामीजी ने अपने महाप्रयाण के लगभग दो माह पूर्व मेरे भविष्य को संवारने और उसे गति देने की ठोस व्यवस्था कर दी। मैं कृतकृत्य हुआ। मुझ जैसे साधारण भक्त-शिष्य का भी वे इतना ख्याल रखते थे।

इस विषय पर बाद में चिन्तन किया तो पाया कि श्री स्वामीजी ने मेरे परिवार के बारे में पूछ कर मेरे परिवार की खुशहाली का दायित्व स्वयं ओढ़ लिया या कहूँ वरण कर लिया, जिससे मैं निर्विघ्न रूप से मुंगेर में रहकर सेवा कर सकूँ और स्वामीजी के सान्निध्य में रह कर जीवन को पूर्णता की ओर ले जा सकूँ। धन्य हैं ऐसे सर्वज्ञ, करुणा के सागर और कृपा के आगार हमारे श्री स्वामीजी। उन्हें शत्-शत् वन्दन, कोटि-कोटि नमन।

इस विषय पर और चिन्तन किया तो मुझे श्री स्वामीजी द्वारा स्वामीजी से सन् 2006 नवरात्रि की नवमी को पूछा गया प्रश्न याद आ गया, 'आत्माभिषेक तुम्हारे साथ इतना क्यों घूमते हैं?' वे संभवत: ऐसा प्रश्न कर स्वामीजी से यह सुनिश्चित कर लेना चाहते होंगे कि मेरी देख-भाल वे भली-भाँति करेंगे या मेरे संरक्षक-अभिभावक बने रहेंगे। उक्त बातें कह कर श्री स्वामीजी ने न केवल इस जीवन को संवारने की व्यवस्था कर दी, बल्कि आगे का भार भी स्वामीजी के कंधों पर डाल दिया। महापुरुषों की लीलायें अनन्त हैं, अगम्य हैं। उनका

निहितार्थ क्या था, यह तो वही बता सकते हैं या भविष्य में होने वाली घटनाओं से पता चलेगा।

श्री स्वामीजी को नमन कर अब मैं फिर अपने मूल विषय – स्वामी निरंजन की लीलाओं पर आता हूँ।

स्वामीजी की गंभीरता को देख मेरा चिन्तित होना और फिर विनोद के क्षण

श्री स्वामीजी की महासमाधि के बाद षोडशी कार्यक्रम में भाग लेने के लिये अनेक भक्त, संन्यासी रिखिया पहुँचे थे। मैं भी मुंगेर से 7 दिसम्बर को रिखिया पहुँच गया था। मुझे तपोवन और अखाड़ा के बीच स्थित गेट पर सेवा मिली थी। 22 दिसम्बर को कार्यक्रम का समापन होना था। मैंने स्वामीजी को आते-जाते कई बार देखा, उनके चेहरे पर मुझे बहुत गंभीर मुद्रा ही दिखी। उनके चेहरे के गांभीर्य को देख मैं, मूढ़, चिन्तित हो गया। मुझे लगा कि हो सकता है इनको आज श्री स्वामीजी की बहुत याद आ रही होगी, इसीलिये इतने गंभीर हैं। मन में विचार आया कि इन्हें किसी तरह हँसाया जाना चाहिये। लेकिन यह साहस कौन करे? उनकी गंभीरता को देख, मैं शान्त बैठा रहा।



थोड़ी ही देर बाद स्वामी सूर्यप्रकाश ने मुझे बुला लिया। उन्होंने बताया कि 24 से 30 दिसम्बर तक गंगा दर्शन में श्रद्धांजलि सप्ताह मनाया जायेगा। उसके निमन्त्रण पत्र सीमित मात्रा में छप कर आ गये हैं। आप जिन्हें ठीक समझें, उनके बीच बाँट दें। मुझे ऑफिस के पीछे चबूतरे पर खड़ा कर दिया गया।

कुछ ही देर बाद ऑफिस की ओर से आते हुए स्वामीजी दिखे। पूछा, 'यहाँ क्यों खड़े हैं? आप त्रिभुवन के सामने खड़े रहिये।' बोल कर वे तपोवन चले गये। उनकी बात सुनकर मुझे कुछ अच्छा लगा। कुछ देर बाद

वे फिर ऑफिस की ओर लौटे और मेरे सामने आकर खड़े हो गये। दोनों हाथ फैलाकर मुझसे कहते हैं, 'मुझे भी एक कार्ड मिलेगा?' उनके चेहरे पर बाल-सुलभ शरारत स्पष्ट रूप से मुझे दिखी और मैंने पता नहीं कैसे और क्यों, उन्हें उत्तर दिया, 'यह आपके लिये नहीं है।' और वे यह कहते हुए कि 'नहीं मिलेगा, तो भी चलेगा', तपोवन को चले गये।

मैं एकदम हैरान कि यह क्या है! मैं तो इनके गांभीर्य को देख चिन्तित था और ये पूरे प्रफुल्लित लग रहे हैं। इस घटना पर चिन्तन किया तो ऐसा लगा, संभवत: स्वामीजी को मेरे चिन्तित होने कारण पता चल गया होगा, इसलिये ऐसी परिस्थिति निर्मित कर दी कि वे और मैं, दोनों बिना हँसे नहीं रह सके। मेरी चिन्ता उनकी हँसी के साथ ही उड़ चुकी थी। हाँ, अब मुझे एक और चिन्ता सताने लगी कि मैंने स्वामीजी को इतना अभद्र उत्तर क्यों दिया। फिर समझ में आया कि जब वे सामने होते हैं तब न जाने मुझसे क्या-क्या कहलवा लेते हैं। मैं उस समय अपने में जो नहीं रहता हूँ।

श्रद्धांजलि सप्ताह में भक्तों के बीच पुस्तक वितरण

श्रद्धांजलि सप्ताह के समय प्रतिदिन दोपहर को मुंगेर नगर के अलग-अलग क्षेत्रों के भक्तगणों को भोजन-प्रसाद के लिये आमन्त्रित किया जाता था और भोजन कर के लौटते समय उन सभी को एक-एक पुस्तक प्रसाद स्वरूप देने की व्यवस्था थी। पुस्तक वितरण की सेवा मुझे दी गयी थी। मैं मन लगाकर, अपनी सेवा के दायित्व को निभाये जा रहा था। इतने में देखता हूँ कि भोजन करके स्वामीजी भी आ रहे हैं। मेरे सामने खड़े होकर वे हाथ फैला कर कहते हैं, 'एक पुस्तक मुझे भी चाहिये।' मेरा उत्तर इस बार भी विचित्र ही था। मैंने कहा, 'आप हकदार नहीं हैं।' उन्होंने सुना और हँसते हुए आगे बढ़ गये। अन्य लोग, जिन्होंने यह दृश्य देखा, मुझे घूरते रहे। उनके मन में प्रश्न उठा होगा कि व्यक्ति इतना अव्यावहारिक या असभ्य कैसे हो सकता है। लोगों का आना जारी था, इसलिये उन लोगों को भी अपनी-अपनी पुस्तकें लेकर आगे बढ़ना पड़ा। ये घटनायें बहुत छोटी हैं, किन्तु स्वामीजी के विराट् व्यक्तित्व की झलक इनसे मिलती है।

मैंने कहीं पढ़ा था कि बड़े लोगों के बड़प्पन को आँकना-जाँचना हो तो उनके जीवन से जुड़ी छोटी-छोटी घटनाओं का गहराई से अध्ययन करो। मुझे अब इस कथन की सत्यता प्रकट होती दिख रही है।

अब सन् 2010 और उसके बाद की स्वामीजी की लीलाओं का क्रमवार वर्णन करता हूँ।

सब कुछ गुरु पर छोड़ दो!

मार्च 2010 में स्वास्थ्य रक्षा सत्र की कक्षा लेकर मैं मुख्य सड़क से मेन गेट की ओर जा रहा था। ठीक उसी समय स्वामीजी भी कुछ अन्य लोगों के साथ कुटीर से मेन गेट की ओर जा रहे थे। वे मुझसे पीछे थे। मैंने उन्हें नहीं देखा था। उन्होंने मुझे देख कर थोड़ी ऊँची आवाज में पुकारा, 'आत्माभिषेक जी।' मैं तुरन्त सामने पहुँचा। पूछते हैं, 'आपने पत्र में क्या लिखा है?' मैंने उत्तर दिया, 'आपने जब पढ़ ही लिया है, तो पूछते क्यों हैं कि क्या लिखा है।' मैं अपने व्यवहार से स्वयं भौचक्क था। स्वामीजी, 'ऐसे भी लिखा जाता है?' मैंने कहा, 'आपको भी अपने हृदय की बात न लिखूँ तो किसे लिखूँ?' स्वामीजी, 'वह तो सही है, लेकिन सब कुछ गुरु पर छोड़ दीजिये।' मुझे चुप होना ही था। इतना गंभीर और व्यापक आदेश जो मिला था। सोचता हूँ, उन्होंने यह कह कर मेरा सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया है।

मैंने अपने पत्र में स्वामीजी को याद करते हुए लिखा था, 'श्री स्वामीजी कह गये हैं कि वे शीघ्र ही आयेंगे, यानी जन्म लेंगे। मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं यह शरीर छोड़ सकूँ और जहाँ कहीं श्री स्वामीजी जन्म लें, मैं भी उनके पड़ोस में जन्म ले सकूँ, जिससे मैं श्री स्वामीजी को अपना बाल सखा बना सकूँ। यह सुख पाने को मेरे हृदय में भाव उठ रहे हैं।'

स्वामीजी की योजना में यह बात फिट नहीं हुई होगी, जिससे यह बात उन्हें रास नहीं आई और उन्होंने कहा होगा, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो।'

आश्रम आनन्द से भर जाता है न!

1-11-2010, कुटीर के सामने नारियल के तने से बनी दो बैंचों पर मैं और शंकरानन्द जी बैठे थे। प्रात: के 7 बजे होंगे। अचानक स्वामीजी का सुखद आगमन हुआ। हम दोनों उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम निवेदित किया। उन्होंने कमर से ऊपर अपने को आगे झुकाकर मुझे हरि ॐ कहा। मुझे यह मुद्रा देखकर आभास हुआ कि आज स्वामीजी पूरे मूड में हैं।

अगला दृश्य भी कम रोचक नहीं था। स्वामीजी स्वयं खड़े रहे और मुझे उसी बैंच पर बैठने के लिये बाध्य किया। मेरे बैठने के बाद स्वयं भी उसी बैंच



पर मेरी बायीं ओर बैठ गये। उनके चेहरे पर शरारत भरी मुस्कान तैर रही थी, जिसे देख कर मुझे लगा कि आज मेरे स्वामीजी कुछ गुल खिलायेंगे। स्वामी शंकरानन्द से कहते हैं, 'स्वामी आत्माभिषेक के आने से पूरा आश्रम आनन्द से भर जाता है न! कितना अच्छा लगता है?' यह वक्तव्य सुनकर कौन सहज मनोवृत्ति में रह पायेगा? मन में भाव आया कि ये बाबा जी मुझे पूरा पागल बनाये बिना नहीं छोड़ेंगे। आश्रम में लोग आते हैं, उनके दर्शन प्राप्त कर अपने

को कृतार्थ करते हैं, अपने आपको आनन्द से भर लेते हैं। आज तो यहाँ उल्टी गंगा बह रही हैं, क्या बोलूँ?

इसी बीच कुटीर से कुछ बिस्कुट और चाय आयी। वे चाय पीने लगे और एक बिस्कुट भी लिया। फिर मुझसे कहते हैं, 'एक आप भी लीजिये!' मैं संकोचवश ऐसा नहीं कर सका। वे लगे रहे, 'लीजिये, लीजिये न!' मजबूरन मैंने एक बिस्कुट उठाया और खाने लगा। लेकिन मैं बहुत असहज अनुभव कर रहा था। तभी शंकरानन्द जी को देख कहते हैं, 'देखा, ले लिया न!' कहावत है, 'भई गति साँप छूछूंदर केरी।' उस समय मेरी भी यही स्थिति बन गयी थी। जब तक नहीं लिया तब तक जिद करते रहे और जब ले लिया तो कटाक्ष कर रहे हैं। जैसे ही मैंने बिस्कुट खा लिया, तुरन्त कहते हैं, 'एक और लीजिये।' मैंने मना किया तो फिर वही आग्रह। तब मैंने कहा कि आप फिर कुछ कहेंगे। इस पर कहते हैं, 'अब नहीं कहूँगा, वह (शंकरानन्द जी) नहीं हैं अभी।' मैंने एक और बिस्कुट उठा कर खा लिया।

मैं चकित और भ्रमित भी हुआ उनकी इस लीला को देख कर। ऊपर से बहुत लोग देख भी रहे हैं। मैं अपने को कहाँ छुपा लूँ? लगता है मेरा अल्प बुद्धि होना, उन्हें कुछ ज्यादा ही भा गया है, क्योंकि तभी वे खुल कर खेल रचा सकते हैं। बाल कृष्ण की बाल लीलायें भी तो ऐसी ही रही होंगी।

आप बुलायें तो भला! मैं कैसे नहीं आऊँगा?

मैं 3-11-2010 को प्रातः 7 बजे कुटीर पहुँचा। नीचे गाड़ी खड़ी थी। स्वामी सूर्यप्रकाश पास ही खड़े थे। मैंने सोचा वे संभवतः रिखिया जा रहे होंगे। कुछ देर बाद स्वामीजी आये और सामने की सीट पर बैठ गये।

मैंने आगे बढ़कर स्वामीजी के चरण स्पर्श किये। इस पर स्वामीजी हाथ जोड़ कर कहते हैं, 'अब छः को फिर मिलते हैं।' मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'आप छः को वापस आ रहे हैं?' उनके उत्तर ने मुझे अन्दर तक स्तम्भित कर दिया। वे कहते हैं, 'आप बुलायें तो भला! मैं कैसे नहीं आऊँगा?' उनके इन शब्दों को सुनकर मैं चकित हुआ। मुझे ऐसा लगने लगा है कि मेरे प्रति उनके हृदय में जो प्यार है, उसको सार्वजनिक रूप से प्रकट करने का कोई अवसर वे नहीं चूकते हैं। मैं किंकर्तव्यविमूढ़ बना खड़ा का खड़ा रह गया। बोलना तो दूर, मैं उस क्षण विचारशून्य हो गया था। 'नमः पार्वती पतये हर-हर महादेव' मन्त्र के उद्घोष के मध्य उनकी गाड़ी चल दी।

स्वामीजी की लीला का पार पाना किसी के लिये संभव नहीं है और ऊपर से मैं ठहरा एक मूढ़। समझने का प्रयास भी नहीं कर सकता। हृदय आँसुओं में डूब कर आनन्द से भर जाता है। जो देख रहा हूँ, सुन रहा हूँ, उस पर विश्वास ठहरता ही नहीं। सब दिवास्वप्न सा लगता है।

'इब्तदाये इश्क है, रोता है क्या? आगे-आगे देखिये होता है क्या?'

इन पंक्तियों के भाव मुझ पर इस समय खरे उतर रहे हैं। मुझे इसका स्पष्ट आभास होने लगा है कि मेरा भाग्य चर्मोत्कर्ष की ओर अग्रसर है। मैं दिन-पर-दिन और पागल होता जा रहा हूँ, पागलपन बढ़ता ही जा रहा है।

खाना खाकर फिर आपके दर्शन करता हूँ

मैं 8-11-2010 शाम का भोजन पाकर मेन गेट के पास बनी बैंच पर बैठा था, इतने में अखाड़ा की ओर से स्वामीजी आते दिखे। मैंने खड़े होकर 'हरि ॐ' निवेदित किया। इसका उत्तर सुखद हाथ जोड़कर कहते हैं, 'राम राम जी!' वे कुटीर की ओर जाने लगे तो मैं भी साथ हो लिया। कुटीर के पास पहुँच कर मैं रुक गया। कुटीर में प्रवेश करते ही स्वामीजी पीछे मुड़े और मुझसे कहते हैं, 'खाना खा कर आता हूँ, फिर आपके दर्शन करता हूँ।'

मैं उनके इन विचित्र शब्दों को सुन कर फिर कुछ देर तक स्तम्भित खड़ा रहा। मेरा मस्तिष्क कुछ क्षणों के लिये सुन्न हो गया था। थोड़ा संभलने पर मन में विचार आया कि ये बाबा जी मुझे पूरा पागल बनाये बिना मानेंगे नहीं। हर दिन नये गुल खिलाते जा रहे हैं।

कुटीर से बाहर आने पर पूछते हैं, 'आपका स्वास्थ्य कैसा है?' मैंने उनके प्रश्न को अनसुना कर प्रतिप्रश्न किया, 'मैं आप से कब मिलूँ?' उत्तर था, 'कल'। मेरा प्रश्न, 'किस समय?' उत्तर, 'नौ बजे'। मेरा अगला प्रश्न, 'कहाँ?' उनका उत्तर, 'वहाँ, सामने।' फिर उलाहना सा देते हुए कहते हैं, 'मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिला है।' मेरा उत्तर था, 'जैसा आपने रखा है, वैसा ही हूँ। आप मुझे बातों में उलझा लेते हैं और मैं जो पूछना चाहता हूँ, आप से नहीं पूछ पाता। इसलिये पहले मैंने ही पूछ लिया।'

आज सन्ध्याकालीन साधना में स्वामीजी भी आये। मेरा मन आनन्द के सागर में हिलोरें ले रहा था कि कल स्वामीजी से बातें होंगी। मैं भूल ही गया था कि आज मैंने अपने गुरु के प्रश्न का उत्तर न देकर अनजाने में उनकी



अवहेलना कर डाली है। लेकिन मैं पहले ही लिख चुका हूँ कि जब मैं उनके सामने होता हूँ, वे मेरी बुद्धि का हरण कर लेते हैं और फिर मैं वही बोलता या करता हूँ, जो वे चाहते हैं। आज भी वैसा ही तो हुआ था। अन्यथा अपने आप में रहते हुए क्या मैं कल्पना भी कर सकता हूँ कि वे पूछें और उत्तर न दूँ।

कमरे में पहुँच कर उन विषयों की सूची बना डाली, जिन पर कल बात करनी है। रात में 12 बजे नींद खुल गई और फिर सो नहीं सका, यही सोच-सोच कर कि कल स्वामीजी से सभी बातें कर डालूँगा। प्रातः उठकर फिर उसी उधेड़-बुन में लगा रहा। सात बजे कुटीर पहुँचा। दर्शन हुए, मेरे समक्ष वे नौ बजने तक रहे भी। किन्तु हठात् वे कहीं चले गये और मैं ठगा-सा बैठा रहा।

मेरी सारी योजनायें धरी की धरी रह गयीं। मुझे लगा कि जानबूझकर उन्होंने मुझसे मिलना टाला है। उन्हें मजा जो आता है मुझे तड़पाने में, रुलाने में।

सोने के पहले रात में भरपूर रोया। रोते-रोते मन में भाव आया कि इस तरह समय देकर न मिलना, मुझ पर उनका अनुग्रह ही तो है। वे निश्चय ही मेरे उतावलेपन को समाप्त कर देना चाहते हैं। मुझमें असीम धैर्य विकसित होते देखना चाहते हैं। वे कह ही चुके हैं, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो।' लेकिन मैं अपने मन की चलाने में लगा रहता हूँ।

कुछ दिन इसी ऊहापोह की मन:स्थिति में गुजरे। 22 नवम्बर को उन्हें एक लम्बा पत्र लिखा। मेरे मन पर जो बीती, सब लिख दिया। यह भी लिख दिया कि आपने इस बार समय देकर मुझसे मिलना टाला है, अब मैं भविष्य में आपसे मिलने के लिये समय की याचना कभी नहीं करूँगा। यह लिख कर मैंने अपनी अहमियत उन्हें बतानी चाही। यह सब लिखते समय शायद मैं भूल गया था कि वे मेरी नस-नस से परिचित हैं। वे मेरी इसी अहमियत, अहंकार को ही तो गलित करने में लगे हैं।

23 नवम्बर को स्वामीजी रिखिया से वापस आ गये। गुरु पीठ पूजा के बाद स्वामीजी सामने लॉन में खड़े थे। मैंने 'हरि ॐ' निवेदित किया और कुछ क्षण उन्हें देखता रहा, फिर चरण स्पर्श किये। उनकी लीला के दर्शन हुए। वे दोनों हाथ जोड़कर और कमर से थोड़ा आगे झुककर मुझसे कहते हैं, 'प्रणाम!' एक बार फिर मैं कुछ देर के लिये कहीं खो गया। मैं जितना समझने का प्रयास करता हूँ, उतना उलझता जाता हूँ। इन्हें समझना मेरे वश में नहीं है।

रात को फिर कल के पत्र में, पुनश्च में एक और लम्बा पत्र लिखा। पत्र लिखते-लिखते अचानक मन में विचार आया कि यह मेरा अन्तिम पत्र है। भविष्य में अब पत्र भी नहीं लिखूँगा। अब न तो उनसे मिलकर बताना है और न ही अपने भावों को पत्र के माध्यम से उन्हें बताना है। यह भी लिखा कि ये विचार भी आपके द्वारा सम्प्रेषित हैं। आपने मेरे विचारों को बाँध दिया है, मेरी लेखनी को भी अवरुद्ध कर दिया है तो फिर मैं व्यर्थ ही अपने हाथ-पैर क्यों मारूँ? अब सब कुछ आप पर छोड़ता हूँ। वर्ष के आरम्भ में आपकी सारगर्भित उद्घोषणा, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो' को मैं अभी तक आत्मसात् नहीं कर पाया हूँ। कृपा बरसाइये, आशीर्वाद दीजिये कि मैं उक्त शब्दों को पूरी तरह आत्मसात् कर सकूँ।



मेरी दृष्टि में स्वामीजी का एक असामान्य फोटो

26 नवम्बर 2010 के दिन मुझे स्वामीजी का एक असामान्य फोटो प्राप्त हुआ, जिसमें उनका चेहरा आधे से कुछ अधिक दृश्य होता है। उसे बड़ा करवा कर, सबसे पहले फ्रेम कराकर वह फोटो पूज्य अम्माजी को भेंट किया। आज दूसरा फ्रेम किया हुआ फोटो लेकर मैं कुटीर के पास खड़ा था। प्रात: का समय था। स्वामीजी सीढ़ियाँ चढ़ते दिखे, ऊपर पहुँचते ही फिर एक अजीब सम्बोधन, 'क्या महाराज!' और बैंच पर बैठ गये। मैंने कहा, 'पहले चरण स्पर्श कर लूँ।' पर चरणों के बदले मैंने मोजों का ही स्पर्श किया था, फिर याद आया कि स्वामीजी टोकेंगे तो मैंने मोजों के ऊपर पैरों को छुआ। उनकी टिप्पणी थी, 'यह तो टाँग स्पर्श हुआ।' इसके बाद मैंने वह फोटो उन्हें देते हुए कहा, 'आपको किसी से मिलाना है।' फोटो देखकर वे खुश हुए। फिर पूछते हैं, 'यह किसके लिये है?' मैंने कहा, 'आपके लिये।' फिर वह फोटो उन्होंने अपने चेहरे से इस प्रकार सटाकर रख ली कि फोटो का अधूरा भाग पूरा हो जाए।

इसके बाद मैंने उसी फोटो की प्रिन्ट उनके हाथों में दी तो पूछते हैं, 'इसका क्या करना है?' मैंने काला मार्कर पैन उनके हाथों में देते हुए कहा, 'इस पर मेरे लिये कुछ लिख दीजिये।' उन्होंने तुरन्त ही लिख दिया–

"स्वामी आत्माभिषेक जी को सेवा, साधना, समर्पण, संयम और स्वाध्याय के लिये मंगल कामनायें"

ॐ प्रेम

– स्वामी निरंजन 26-11-10

फिर उन्हें रात में लिखा एक छोटा-सा भावनात्मक पत्र हाथों में दिया। पत्र में उन्हें उलाहना दिया था कि आजकल आप जो मेरे प्रति अपना प्यार सबके सामने प्रदर्शित करते रहते हैं, उसे बन्द कीजिये। यह हम दोनों तक सीमित रहना चाहिये। आप जाने और मैं जानूँ। बस। स्वामीजी पढ़ कर मुस्कुराये और पूछते हैं, 'यह क्या लिखा है?' मैंने कहा, 'मैं पागल हूँ।' सुनकर मुस्कुराये और चल दिये।

स्वामीजी का अभिषेक – संन्यास पीठ, मुंगेर का रजिस्ट्रेशन

हम लोग शतचण्डी यज्ञ में भाग लेने के लिये 1 दिसम्बर को बस द्वारा मुंगेर से रिखिया पहुँचे। श्री स्वामीजी की दिव्य समाधि का दर्शन किया। सभी कुछ दिव्य और भव्य लग रहा था। वह पूरा क्षेत्र परीलोक सा सुन्दर लग रहा था।

मुझे अखाड़ा और तपोवन के बीच स्थित गेट पर सेवा दी गयी और स्वामीजी ने स्वयं मेरे बैठने के लिये एक कुर्सी की व्यवस्था करायी। मैंने कुर्सी नीम के पेड़ के सामने लगा ली थी, जिससे मैं तपोवन पर नजर रख सकूँ और अखाड़ा में स्वागतम् देख सकूँ। 4 दिसम्बर को स्वामीजी तपोवन से आये, मैं खड़ा हो गया, वे सीधे आते ही गये तो मैं बगल में खड़ा हो गया। स्वामीजी ने दोनों हाथों से मेरी कुर्सी उठायी और नीम के पेड़ के थोड़ा पीछे ले जाकर रख दी। और बोले, 'आप यहाँ बैठिये! यहाँ से आप दोनों ओर दृष्टि रख सकते हैं।' मैं हैरान कि इन्हें मेरी कुर्सी स्वयं उठाने की क्या आवश्यकता थी। मुझसे कह देते, 'यहाँ से उठा कर वहाँ रख लीजिये।' यह उनकी अतिशय सहजता और सरलता ही तो है।

वहाँ बैठा तो मैंने पाया कि मैं अखाड़ा में बैठे स्वामी सत्संगी और स्वामीजी को स्पष्ट रूप से देख पा रहा हूँ और तपोवन तो देख ही पा रहा था। लगता है उन्होंने मुझे लगातार दर्शन लाभ देने के लिये यहाँ बैठाया है।

6 दिसम्बर 2010 का दिन ऐतिहासिक दिन था। आज शतचण्डी यज्ञ का शुभारम्भ है, श्री स्वामीजी की भू-समाधि की प्रथम वर्षगाँठ है। आज ही श्री स्वामीजी के आदेशानुसार जो संन्यास पीठ नामक संस्था मुंगेर में स्थापित की जानी है, उसकी रजिस्ट्रेशन की कार्यवाही पूरी हुई है। और आज ही संन्यास परम्परा में स्वामीजी का अभिषेक, मंगलमय मन्त्रों, स्तोत्रों के उच्चारण के बीच विधिवत् सम्पन्न हुआ। बाद में उन्हें नये गैरिक वस्त्र,



रजतदण्ड और कमण्डलु भेंट किये गये। पुष्पों की वर्षा की गई। मालायें पहनाई गईं। मैं थोड़ी दूरी पर बैठा-बैठा सब देख रहा था, आनन्द के आँसू बहे जा रहे थे। मेरे स्वामीजी अब और भी विशेष हो गये हैं। आज ही उनकी स्वर्ण जयन्ती भी मनायी गयी। अभिषेक पूरा होने पर, मैं अपने सेवा के स्थान पर पहुँच गया। थोड़ी देर बाद स्वामीजी तपोवन जाने के लिये गेट पर पहुँचे तो मैंने चरण स्पर्श करने के पूर्व कहा, 'स्वामीजी! मुझे आपका अभिषेक करने का अवसर तो नहीं मिल पाया, अब चरण-स्पर्श तो कर लेने दीजिये।' मुस्कुराते हुए स्वामीजी कहते हैं, 'आप तो आत्माभिषेक हैं; आपको अभिषेक करने की क्या आवश्यकता है?' वहाँ उपस्थित सभी लोग हँस पड़े।

दुर्गा हवन और स्वामीजी की लीला

1 जनवरी 2011 से स्वामीजी ने एक वर्ष तक दुर्गा हवन का संकल्प लिया, जिसमें बारह-बारह संन्यासियों द्वारा सुबह दुर्गाजी के हजार नामों का पाठ तीन बार किया जाना था। 9 जनवरी 2011 को मुझे बताया गया कि दुर्गा हवन में मन्त्र पाठ करने वाले समूह में मैं भी हूँ। ठण्ढी बहुत अधिक होने के कारण हवन श्रीपीठ में आयोजित था। मैं पीछे की ओर बैठा था और वहाँ से स्वामीजी दिख नहीं रहे थे। कुछ देर बाद मैंने देखा कि स्वामीजी थोड़ा आगे झुके और मेरी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर कहते हैं, 'प्रणाम!'

हवन समापन के बाद स्वामीजी सभी को आश्चर्य में डालते हुए मुझसे पूछते हैं, 'आत्माभिषेक जी, आप कब आये?' मैंने अचकचा कर कहा, 'मैं तो यहीं हूँ।' स्वामीजी, 'मैंने सोचा आप यहाँ नहीं हैं।' मैंने दुहराया, 'मैं तो यहीं पर हूँ स्वामीजी!' स्वामीजी फिर भी सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने कहा, 'मैंने सोचा कि आप कहीं गये होंगे, क्योंकि आप दिख नहीं रहे हैं।' मैंने थोड़ा जोर देकर कहा, 'स्वामीजी! मैं कहीं नहीं गया हूँ।' स्वामीजी ने फिर कहा, 'आप एक भी दिन सत्संग में नहीं दिखे ।' मैंने कहा, 'मैं गरुड़-विष्णु में सेवा में हूँ।' स्वामीजी शायद तह तक जाना चाहते थे। उन्होंने फिर पूछा, 'जो सेवा में हैं, उन्हें सत्संग में नहीं आना है क्या?' मैं क्या बोलता? चुप रहा। जहाँ से उत्तर आना था, नहीं आ रहा था। अन्त में स्वामीजी ने सीधे पूछा, 'क्या स्वामी सूर्यप्रकाश! यह क्या व्यवस्था है?' स्वामी सूर्यप्रकाश को लगता है कोई उत्तर नहीं मिल पा रहा था। तभी स्वामी तपोनिधि कहते हैं, 'स्वामीजी! यह मेरी गलती है।' फिर स्वामी सूर्यप्रकाश मुझे देखते हुए कहते हैं, 'बसंत-पंचमी के सत्संग में इसकी प्रतिपूर्ति कर देंगे।' तब जाकर इस वार्त्तालाप पर विराम लगा।

आज की घटना से यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आयी कि स्वामीजी की नजर सभी ओर और सब पर रहती है।

30 जनवरी 2011 को श्री पीठ में हवन हुआ। समापन के बाद मैं साष्टांग लेट गया, मेरी अंगुलियाँ स्वामीजी के चरणों पर थीं। मैंने उनके चरणों को छूते हुए कहा, 'अपने चरण मेरे सिर पर रख दीजिये।' स्वामीजी कहते हैं, 'अभी मुझे आपसे राजा बलि की तरह तीन वरदान लेने हैं, फिर सिर पर पैर रखूँगा।' स्वामीजी चले गये और मैं उठ खड़ा हुआ।

बाद में बहुत चिन्तन किया कि उनके इस कथन का क्या अर्थ है। कहीं नहीं पहुँचा। पहुँचता भी कैसे? शुद्ध लीला जो है उनकी। और समझ में आ जाये, वह लीला कैसी? एक दिन स्वामीजी हवन से उठ कर अखाड़ा की ओर चल दिये। फिर उन्हें मेरा ख्याल आया होगा तो रुके, पीछे मुड़ कर मुझे देखा और तुरन्त मेरे सामने आ खड़े हुए। मैंने चरण स्पर्श किया और फिर वे चले गये। सभी उपस्थित लोग हँस पड़े।

एक दिन फिर स्वामीजी हवन से उठकर अखाड़े की ओर कई कदम बढ़ा चुके थे तो मैं थोड़ा चिल्लाया, 'स्वामीजी!' स्वामीजी रुक गये और मेरे सामने आकर खड़े हो गये। वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने जोर का ठहाका लगाया।

कामाख्या के स्वामी अमृतानन्द को दिव्य आशीर्वाद!

यह घटना वर्ष 2011 की है। मेरी सेवा उन दिनों स्वागत कक्ष में थी। एक प्रात: करीब 9 बजे कामाख्या के जटा-जूटधारी स्वामी अमृतानन्द सरस्वती का आगमन हुआ। उनकी अवस्था 50-55 वर्ष रही होगी। उनका जूड़ा बहुत विशाल था। वे आये और स्वामीजी के दर्शन की इच्छा प्रकट की। मैंने आश्रम प्रशासन से संपर्क किया। अन्त में मुझसे कहा गया कि स्वामी शंकरानन्द से उन्हें मिलवा दूँ।

मैं उन्हें लेकर स्वामी शंकरानन्द जी के पास गया। फिर पौने ग्यारह बजे उन्हें लेकर दोपहर के भोजन के लिये जाने लगा तो वे कहते हैं, 'मैं स्वामीजी के दर्शन करने के लिये आया हूँ और जब तक दर्शन नहीं कर लूँगा, खाना नहीं खाऊँगा।' उस समय मैंने उनसे कोई जिरह नहीं की। प्रशासन को उनके कथन से अवगत करा दिया।

कुछ ही मिनटों में सूचना मिली कि स्वामीजी अमृतानन्द जी से 3.00 बजे मिलेंगे। मैंने उन्हें बताया, वे प्रसन्न हुए।

वे स्वामीजी से मिले और वापस आने पर उन्होंने कहा, 'मैं स्वामीजी के दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गया हूँ।' उन्होंने पहले अपनी कुछ जिज्ञासायें प्रकट कीं, निर्देश प्राप्त किये और फिर स्वामीजी से आशीर्वाद की याचना करते हुए कहा, 'आप अपने दोनों चरण मेरे शीश पर रख कर आशीर्वाद देने की कृपा करें।' उन्होंने बताया कि पहले तो स्वामीजी मुस्कराये और कुछ क्षणों बाद उन्होंने अनुरोध को स्वीकार करते हुए अपने दोनों चरण मेरे शीश पर रख दिये। उस समय मुझे जो अनुभव हुआ वह कुछ ऐसा था मानो मेरे पूरे शरीर में ग्यारह हजार वोल्ट की करेन्ट प्रवेश कर गई हो, मेरा पूरा शरीर झंकृत हो गया। उनके शब्द थे, 'मैं धन्य हो गया।' फिर कहते हैं, 'आपके गुरु सचमुच महान् हैं, वे वास्तव में परमहंस हैं। मैं जितना कुछ सुन कर आया था, उनमें उससे कहीं अधिक पाया।' वे गद्‌गद थे।

बाद में मैं शाम के भोजन के लिये उन्हें ले गया। वे सहर्ष गये। उन्होंने अपने झोले से पत्थर की एक प्लेट और पानी के लिये नारियल का खोल निकाला । प्लेट में खाना खाकर, धोकर फिर उसे झोले में रख लिया। फिर चल दिये। उनके द्वारा कहे गए शब्द आज भी मुझे रोमांचित कर देते हैं। मेरे स्वामीजी से कोई प्रभावित हुए बिना नहीं जा सकता है। वे ईश्वरीय गुणों से परिपूर्ण हैं, वे ईश्वर तुल्य हैं, बल्कि ईश्वर ही हैं।

कोई पैर छूने वाला नहीं मिला सबेरे से

5 अप्रैल 2011 को चण्डीस्थान में स्वामीजी का सत्संग होना था। मुझे कहा गया कि स्वामीजी के साथ जाना है। मैं दोपहर बाद कुटीर के सामने खड़ा प्रतीक्षारत था। इतने में उत्तर दिशा से अचानक स्वामीजी का आगमन हुआ। आते ही कहते हैं, 'महात्मा जी! कैसे हैं? आज सबेरे से आपको देख रहा था, आप नहीं थे। सबेरे से कोई पैर छूने वाला नहीं मिला है।' मैं चरणों में लिपट गया, लिपटा रहा थोड़ी देर। उठ कर खड़ा हुआ और बोला, 'क्यों इतना उधार चढ़ा लेते हैं? बीच-बीच में उतारते रहा करें।' मन आनन्द से भर गया था। सोचा आज तो नदी खुद चल कर मुझ प्यासे की प्यास बुझाने आ पहुँची है। उनकी यह आकुलता मेरे लिये अकल्पनीय है। अपने भाग्य को सराहते-सराहते तो थक गया हूँ। क्या कहूँ? 'न जाने कौन से गुण पर दयानिधि रीझ जाते हैं?' मैं तो कहीं कुछ हूँ ही नहीं। फिर भी...।

स्वामीजी द्वारा मेरी कक्षा का आँकलन/निरीक्षण

7 अप्रैल 2011 को मैं प्रात: 9:30 से 10:50 बजे तक योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्र की कक्षा ले रहा था, विषय था प्राणायाम। मैं प्राणायाम के बारे में समझा रहा था। उसी बीच स्वामीजी स्वामी योगमाया के साथ उत्तरी लिफ्ट से ऊपर जा रहे थे। उन्होंने मुझे कक्षा लेते देखा तो लिफ्ट को नीचे उतारा और लगभग



10 मिनट तक लिफ्ट में ही दूसरी मंजिल में खड़े रहे। संयोग ऐसा हुआ कि मैं समझाने में व्यस्त रहा, संभवत: मेरी दृष्टि विद्यार्थियों पर ही रही होगी, मैंने जाना ही नहीं कि कोई लिफ्ट में खड़ा है। यह सब स्वामी योगमाया ने बाद में मुझे बताया। वे कहतीं हैं, 'आपने देखा क्यों नहीं? स्वामीजी दस मिनट तक खड़े रहे।' मैंने कहा, 'एक बात तो सामने आ ही गई कि मेरा पूरा ध्यान विद्यार्थियों पर था, जो होना चाहिये। हाँ, पढ़ाने की गुणवत्ता के बारे में मुझे जानना होगा।' मन में सोचा कि स्वामीजी ऐसा भी करते हैं।

शाम को स्वामीजी सत्संग से लौटे तो मैं कुटीर के नीचे ही खड़ा था। वे सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। दो ही सीढ़ियाँ चढ़े थे कि अचानक पलट कर खड़े हो गये। चूँकि मैं उनके पीछे था, अब सामने आ गया। चरण-रज ली भरपूर। वे फिर चढ़ने लगे। मैंने पीछे से ही पूछा, 'आज आपने क्या किया है?' स्वामीजी कहते हैं, 'कभी-कभी करना पड़ता है।' इस पर मैंने प्रश्न किया, 'पास हुआ या फेल?' स्वामीजी कहते हैं, 'अभी कैसे बता दें?'

विशुद्ध लीला – यहाँ तो कोई दरार नहीं है

8 अप्रैल 2011 को स्वामीजी दसभुजी दुर्गा मन्दिर में सत्संग से वापस आकर कुटीर के सामने पहुँचे। उनके साथ अन्य लोग भी थे। ठीक उसी समय मैं वहाँ पहुँचा था। मैंने स्वामीजी को हाथ जोड़ कर और थोड़ा आगे झुककर, 'हरि ॐ' निवेदित किया। और उनकी लीला शुरू हो गई। मुझसे कहते हैं, 'पेट में दर्द है क्या?' मैंने बिना कुछ बोले अँगुली से उनके चरणों की ओर इशारा किया। मेरा आशय था कि मैं चरण स्पर्श करना चाहता हूँ। वे उछल कर एक कदम दूर खड़े हो गये और जहाँ पहले खड़े थे उस स्थान को झुक कर गौर से देखने लगे, फिर बोले, 'यहाँ तो कोई दरार नहीं है।'

मैंने फिर उनके चरणों की ओर इंगित किया। वे फिर उछल कर थोड़ा अलग खड़े हो गये और झुक कर उस स्थान को देखते हुए कहते हैं, 'यहाँ भी कोई दरार नहीं है।' सभी चकित थे उनकी इस उछल-कूद को देख कर। मैं आश्वस्त था कि बाबा जी अभी खुल कर खेलने के मूड में हैं। मैंने फिर वही इशारा किया और उन्होंने वही कृत्य दुहराया। यह क्रम कुछ देर चला। मैं कुछ न बोल कर, केवल मुस्कराये जा रहा था। अन्त में मैंने ही यह सोच कर मौन तोड़ा कि यह बाबा जी तो उछलते ही जायेंगे। मैंने कहा, 'आज्ञा हो तो मैं चरण स्पर्श करना चाहता हूँ।' यह सुनते ही वे एकदम शान्त खड़े हो

गये। मैंने देर तक उनके चरणों को बाहों में लपेटे रखा और सिर चरणों पर लगाये रखा। मेरे स्वामीजी मुझ पर कितना प्यार लुटाते रहते हैं – यह कृपा का ही घनीभूत रूप है।

मुझे देख कर उनको अक्सर न जाने क्या हो जाता है। वे ऐसी-ऐसी लीलायें करने लगते हैं जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। मुझे तो उन्होंने पागल बना ही दिया है। उनकी एकसूत्री योजना नजर आती है कि मुझमें मेरा कुछ भी न बचने पाये। मैं हमेशा के लिये अपनी बुद्धि और मन पर भरोसा करना बन्द कर दूँ। मैं अपने को पूरी तरह खाली करने पर विवश हो जाऊँ। ऐसा लगता है मेरी सोचने-विचारने और प्रतिक्रिया व्यक्त करने की क्षमता को स्वामीजी पूरी तरह मिटाने में लगे हैं। मेरी सारी मान्यताओं, पूर्वाग्रहों को ध्वस्त कर देना चाह रहे हैं, ऐसा स्पष्ट आभास मुझे होता जा रहा है। उनकी प्रत्येक नयी लीला के साथ यह आभास विश्वास में बदलता जा रहा है। मेरे करने को कुछ बचा नहीं है, मैं निरुपाय हूँ, असहाय हूँ, दीन हूँ, यही भाव प्रबल होता जा रहा है।

पृथ्वीराज चौहान की 30वीं पीढ़ी – आत्माभिषेक

1 मई 2011 की शाम को सभी आश्रमवासियों के साथ मैं भी पादुका दर्शन पहुँचा। आज स्वामीजी अत्यधिक प्रफुल्लित लग रहे थे। आरम्भ से ही वे विनोद में लीन हो गये। यह देख मैं भी उन्हें छेड़ने के लिये उद्यत हो गया। मैं बीच-बीच में कुछ-न-कुछ टिप्पणी करता रहा और वे मेरी प्रत्येक टिप्पणी का उत्तर भी देते रहे। चुटकुले या हास्य प्रधान कहानियाँ सुनायी गयीं। स्वामीजी ने स्वयं शुरुआत की। इसी क्रम में स्वामी शंकरानन्द जी ने मुझे लक्ष्य कर 'चौहान' के नाम से चुटकुला सुनाया। जैसे ही स्वामीजी ने 'चौहान' शब्द सुना, 'आत्माभिषेक पुराण' आरम्भ कर दिया।

आपको पता है आत्माभिषेक जी पृथ्वीराज चौहान के वंशज हैं। फिर मुझसे पूछते हैं, 'आप कौन-सी पीढ़ी में है?' मैंने उत्तर दिया, 'मैं तीसवीं पीढ़ी में हूँ। चौहान वंश की 74वीं पीढ़ी में पृथ्वीराज का आविर्भाव हुआ और मैं 104वीं पीढ़ी में हूँ।' स्वामीजी सबको यह बताते हुए कि आत्माभिषेक पृथ्वीराज चौहान की 30वीं पीढ़ी में हैं, बहुत प्रसन्न दिख रहे थे। आज इस नयी विधि से उन्होंने मेरे प्रति अपना प्यार लोगों के बीच जाहिर किया। मैंने अपने को धन्य माना।



अम्माजी के कमरे में स्वामीजी के दर्शन

3 जुलाई 2011 को शाम 4.30 बजे मैं अम्माजी के दर्शन करने उनके कमरे में गया था। मैंने चरण रज माथे में लगायी और अम्माजी का वही सधा हुआ प्यार भरा उलाहना सुनने को मिला, 'फुरसत मिल गई आने की?'

मुझे वहाँ बैठे दो मिनट भी नहीं हुए होंगे कि देखा मेरी दायीं ओर दरी पर ही स्वामीजी आकर बैठ गये हैं और अम्माजी के चरण स्पर्श कर रहे हैं। मैं मन-ही-मन बहुत आनन्दित हुआ। मैंने सोचा, मेरे दोनों हाथों में लड्डू आ गये हैं। कुछ क्षण बाद मैंने कहा, 'मैं आपके चरण स्पर्श करना चाहता हूँ। दो माह से अधिक हो गये हैं।' उन्होंने तुरन्त ही दोनों पैर सामने कर दिये और मैं प्यार से उन्हें बाँहों में लपेटे हुए चूमने लगा। वे गिनती गिनने लगे, 'यह एक दिन, यह दूसरा दिन, यह तीसरा दिन...।' मैंने टोका, 'दो माह का बाकी है।' कुछ देर तक यह क्रम चलता रहा और मैं आनन्द में डूबा रहा।

आप तो चमार हैं; अभी चमड़े में ही उलझे हैं

20 जुलाई 2011 को मैं गंगादर्शन कार्यालय की लॉबी में बैठा था, तभी स्वामीजी ऊपर आते दिखे। मैं खड़ा हुआ। वे मुस्कराते हुए मुझे देख रहे थे। मैंने कहा, 'मैं कल जा रहा हूँ।' स्वामीजी पूछते हैं, 'वापस कब आयेंगे? चार

को?' मैंने कहाँ, 'नहीं, पाँच को।' इतनी बात करते-करते हम दोनों लॉबी के बाहर आ गये और वे खड़े हो गये। मैंने साश्चर्य देखा कि वे अपने दायें हाथ की तर्जनी से अपने पैरों की ओर इशारा कर रहे हैं, जिसका अर्थ था कि 'मेरे पैर छुओ।' मैं पैर छूने की मुद्रा में गया तो देखा उन्होंने ऐसी चप्पलें पहन रखी हैं, जिनसे लगभग पूरे पैर ढक गये हैं। मैंने कहा, 'इन्हें उतारिये!' नहीं उतारीं तो मैंने उन्हीं के शब्दों को दुहराते हुए कहा, 'आप ही फिर कहेंगे कि यह चरण स्पर्श नहीं, चप्पल स्पर्श हुआ।' उन्होंने चप्पलें नहीं उतारीं तो फिर मैंने ऊपर, उनकी टांगों का स्पर्श किया। इसके बाद वे आगे बढ़े और मुड़ कर मुझसे कहते हैं, 'आप तो चमार हैं। अभी चमड़े में ही उलझे हैं।' मैंने उत्तर दिया, 'आपने जो बना रखा है, वही तो रहूँगा।' उन्होंने सुना और मुस्कुराते हुए चले गये।

कबड्डी-कबड्डी

17 अगस्त 2011 से स्वामीजी का चार दिवसीय सत्संग आरम्भ होने जा रहा था। मैं शंकरानन्द जी को साथ लेकर सत्संग में जाने के लिये उनके कमरे में पहुँचा। हम बाहर निकले तो देखा स्वामीजी ज्योति मन्दिर में कुछ लोगों से मिल रहे हैं। मैं रुक गया। स्वामीजी जब बाहर आये तो मैंने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और उनके चरणों की ओर इशारा किया। तभी स्वामीजी थोड़ा पीछे हटकर, हाथ फैलाकर, कहते हैं, 'कबड्डी-कबड्डी-कबड्डी।' सभी हँस पड़े और मैंने चरण स्पर्श किये।

ऐसा लगता है मुझे देखते ही उनके मन में शैतानियाँ जोर मारने लगती हैं। रोज-रोज एक नया खेल! एक नयी लीला! मुझसे खेल खेलकर वे आनन्दित हो लेते हैं, इससे बढ़कर मेरे लिये आनन्द का क्या विषय हो सकता है?

बरौनी रिफाइनरी में एक अनूठा अनुभव

मैं 23 अगस्त 2011 को बरौनी रिफाइनरी पहुँचा, तत्पश्चात् वहाँ आयोजित योग शिविर का उद्‌घाटन सत्र हुआ। 24 की शाम 7 बजे के सत्र में कुछ प्रतिभागी आये, संख्या काफी सीमित थी। मैंने शान्ति पाठ आरम्भ किया। मुझे याद है कि मैंने कहा, 'पूरा शरीर शान्त... और... शिथिल। ...पूरे शरीर के प्रति जागरूक हो जाइये। अपनी सहज श्वास-प्रश्वास के प्रति जागरूक हो जाइये...। विचार कीजिये कि ...जो हवा आप ...श्वास के रूप में अन्दर ले

जा रहे हैं ...उसकी कोई सीमा नहीं है। ...वह असीम है। (ये विचार मेरे मन में क्यों और कहाँ से उभर रहे थे, मुझे कुछ पता नहीं था। ये विचार कभी शान्ति पाठ का भाग नहीं रहे हैं) । यह हवा असीम और विराट् सृष्टि का हिस्सा है। ...श्वास लेते समय वही असीम और विराट् ...परमात्मा भी जो असीम और विराट् है ...आप में समा जाता है ...और श्वास छोड़ते समय ...आपका कुछ अंश पुनः उस विराट् में समा जाता है ...यहाँ तक तो मुझे याद है। उसके आगे मैंने क्या कहा, कब तक कहा, कुछ याद नहीं है। बाह्य वातावरण से, यहाँ तक कि अपने से भी मैं बिल्कुल कट चुका था। समय का भी कोई अहसास नहीं रहा।



उक्त मनःस्थिति में अचानक एक विचार मन में आया कि मैं बहुत बोल चुका हूँ। अब बन्द कर देना चाहिये। और फिर धीरे से आँखे खोलने को कहा। मैंने भी आँखें खोलीं, घड़ी देखी तो पता चला 40 मिनट का समय बीत चुका है। यह भी याद आया कि शान्ति पाठ भी मैंने नहीं कराया है। सामने बैठे लोगों को देखा, वे शिथिल अवस्था में पहुँचने लगे।

मैंने सबसे क्षमा माँगी कि इस बीच मैं अपने आप में नहीं था। मैं कुछ भी करने की स्थिति में नहीं था। जो कुछ मैंने आपको कहा या कराया, वह कहीं और से निर्देशित था। मैं कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हूँ।

इसके बाद मैंने उनसे कुछ प्रश्न करने को कहा। प्रश्न सुनकर मैंने समझाने का प्रयास आरम्भ किया, किन्तु शीघ्र ही मुझे आभास होने लगा कि मेरे विचार अभी उसी दिशा में प्रवाहित हो रहे हैं। मैं बोलना कुछ चाह रहा हूँ, बोल कुछ और रहा हूँ। मैंने लोगों से दुबारा क्षमा माँगी और सत्र समाप्त कर दिया।

रात को सोने के पहले इस घटना पर चिन्तन किया। कोई समाधान सामने नहीं आया। मूल प्रश्नों का उत्तर नहीं मिल पाया, यथा, यह अनुभव क्या है?

क्यों हुआ? कैसे हुआ? हाँ, इतना आभास अवश्य हुआ कि यह अनुभव मेरी आन्तरिक यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। यह निष्कर्ष भी निकलता दिख रहा है कि संभवत: वास्तव में जिसे ध्यान कहते हैं, मैं उस स्थिति में पहुँच गया था। स्वामीजी और श्री स्वामीजी से सुन रखा है कि ध्यान लगाया नहीं जाता, बल्कि लग जाता है और ध्यान का लग जाना गुरु कृपा से ही संभव हो पाता है।

इस चिन्तन से यही निष्कर्ष निकला कि यह अनुभव कहूँ या ध्यान कहूँ, मेरे स्वामीजी द्वारा प्रेरित या संप्रेषित है। मेरे हाथ में कुछ नहीं है। मैं ऐसे किसी अनुभव की स्वयं सामर्थ्य बिल्कुल नहीं रखता हूँ। जो कुछ हुआ, उन्होंने किया या कराया। फिर कब होगा? जब वे चाहेंगे।

मेरे कौतुकी स्वामीजी

28 अगस्त 2011 को मैं बरौनी से वापस आ गया। अगले दिन लगभग 8 बजे मैं गंगादर्शन कार्यालय की लॉबी में खड़ा था कि यकायक स्वामीजी वहाँ प्रवेश करते दिखे। मैंने 'हरि ॐ' निवेदित किया। बरौनी के बारे में उन्होंने पूछा, मैंने संक्षेप में बताया भी। तत्पश्चात् मैंने उनके चरणों की ओर इशारा किया। उनकी अनुमति पाकर, मैं घुटनों पर बैठा, दण्डवत् किया तो देखा कि मेरे हाथों में केवल उनकी चप्पलें हैं, वे उछल कर पीछे खड़े हो गये हैं। मैंने अपने हाथों को थोड़ा और पीछे की ओर फैलाया तो देखा कि वे पुन: अपनी चप्पलों में पैर डाले खड़े हैं। मैंने पूरे प्यार से उनके चरण छुए।

जब स्वामीजी यह उछल-कूद कर रहे थे, तो वहाँ खड़े अनेक लोग ठहाका मार कर हँस पड़े थे। कितने कौतुकी हैं हमारे स्वामीजी! हर बार कुछ नया-नया दृश्य उपस्थित करते रहते हैं। मुझे यह स्पष्ट रूप से लगने लगा है कि खास तौर से मुझे सामने पाकर वे अक्सर अपने को शान्त या गंभीर नहीं रख पाते हैं। दूसरे शब्दों में कहूँ तो मुझे देख कर वे प्रसन्न होने का और सबको हँसाने का अवसर हाथ से नहीं जाने देना चाहते हैं।

स्वामीजी को मेरे अनुभव की पूर्व जानकारी!

बरौनी में हुए उस अनुभव के बारे में मैंने आश्रम आकर और चिन्तन किया, फिर यह निर्णय लिया कि लिख कर स्वामीजी को दे देना चाहिये। उस 'अनूठे अनुभव' को लिखकर मैं लिफाफे में रख कर स्वामीजी को देने के लिये साथ में लाया था।

3 सितम्बर से स्वास्थ्य रक्षा सत्र आरम्भ हुआ था। 4 तारीख को सत्संग था, मुझे प्रतिभागियों का परिचय कराने और सत्र के बारे में बताने को कहा गया था। सत्संग के क्रम में स्वामीजी ने कहा, 'स्वामी शंकरानन्द को, जो यहाँ सबसे बुजुर्ग संन्यासी हैं, कोई आम रोग नहीं है। स्वामी आत्माभिषेक भी, जो बुजुर्ग हैं, उन्हें कोई रोग नहीं है।

जैसे ही सत्संग समाप्त हुआ, मैंने वह लिफाफा स्वामीजी की ओर बढ़ाया। लिफाफा देखते ही स्वामीजी पूछते हैं, 'क्या है? अनुभव?' मैंने कहा, 'हाँ'। उन्होंने तुरन्त लिफाफा खोल उसे पढ़ना चाहा, इसी बीच अन्य भक्तगण उनके पास आ गये। उन्होंने उसे लिफाफे में रख दिया।

उनका प्रश्न सुनकर मैं कुछ देर के लिये स्तम्भित हो गया था। मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया कि वह अनुभव इन्हीं की देन थी। उनके प्रश्न का अर्थ एक ही है कि उन्हें सब पता है और पता होने का अर्थ है कि उन्हीं का किया-धरा है। मेरे गुरु सचमुच महान्, सामर्थ्यवान् हैं। वे करुणा और प्रेम से भरे हुए हैं, तभी तो मुझ जैसे अकिंचन की ओर भी उनकी कृपादृष्टि सदैव बनी रहती है।

मेरा 75वाँ जन्मदिन

मैं आँखों की जाँच कराने के लिए नोएडा गया था। इस बीच 2 अक्टूबर 2011 को मेरा पचहत्तरवाँ जन्मदिन पड़ा। आज के दिन स्वामीजी से दूर रहना मुझे बहुत अच्छा तो नहीं लगा, किन्तु सोचा वास्तव में उनसे दूर कहाँ हूँ। मेरे हृदय में, मेरे चिन्तन में वे सदैव बने ही रहते हैं। शारीरिक दूरी का विशेष महत्त्व नहीं होता है। सोचा उनसे मोबाइल फोन के माध्यम से सम्पर्क करूँ। मैं उन्हें यह सोच कर कभी फोन नहीं करता कि पता नहीं वे किस आवश्यक कार्य में व्यस्त हों। उन्हें मेरे कारण किसी प्रकार की असुविधा हो, यह मुझे स्वीकार्य नहीं है। इसलिये जब आवश्यक होता है, मैं उन्हें एस.एम.एस. भेज देता हूँ। आज भी मैंने एस.एम.एस. भेजा –

'मैंने इस धरा पर आज अपने जीवन के पचहत्तर वर्ष पूरे कर लिए हैं, मुझे ऐसा कुछ भी नजर नहीं आता, जिसे मैं आज के दिन आपसे माँग सकूँ। वस्तुत: आपने मुझे वह सबकुछ दे दिया है, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मुझ पर आपका अनुग्रह बरसता रहा है। अब मेरे मन में केवल यही विचार आता है कि मुझे अपने श्री चरणों के इतना

निकट आने दीजिए कि मैं अपनी अंतिम श्वास आपके चरणों में लूँ। आपका अभिन्न – आत्माभिषेक।'

पूज्य स्वामीजी का आशीर्वाद मिला एस.एम.एस. के रूप में – "हरि ॐ! इस नवरात्रि और अष्टमी के पावन दिन माँ शक्ति की मंगलमय कृपा का प्रसाद आपको और आपके परिवार को शान्ति एवं समृद्धि के रूप में प्राप्त हो। सप्रेम स्वामी निरंजन।"

अचानक शक्तिहीनता और उसका कारण

आम तौर से मैं सदैव अपने को ऊर्जा से परितृप्त अनुभव करता हूँ और इसका मूल कारण है, मेरे प्राणाधार स्वामीजी की ओर से निरन्तर मेरी ओर प्रवाहित करुणा, कृपा और प्यार की ऊर्जा।

19 अक्टूबर 2011 को अचानक मुझे शक्तिहीनता का अनुभव हुआ। इसका कोई स्पष्ट कारण मेरी समझ में नहीं आया। इसका प्रभाव पूरे दिन रहा। अगले दिन सब ठीक हो गया। 23 अक्टूबर 2011 को दुर्गा-हवन जैसे ही समाप्त हुआ, मुझे फिर शक्तिहीनता का अनुभव हुआ। आज यह अनुभव कुछ अधिक गहन था, संभवत: वैसा ही जैसा मैंने सितम्बर 1996 में अनुभव किया, जब मैं लगभग जा चुका था। मैं कुछ भी समझने में असमर्थ था कि मुझे यह क्या हो रहा है और क्यों। मैं विश्राम करने के लिये बाध्य हुआ। मन भी उचटने लगा। स्वामीजी से भेंट भी नहीं हो पा रही थी। पता चला कि वे कुछ अस्वस्थ हैं। यह पता चलते ही मुझे विचार आया कि हो न हो, उनकी अस्वस्थता ही मेरी शक्तिहीनता का कारण है। 25 अक्टूबर 2011 को प्रात: उठा तो सहसा कुछ अच्छा लगा। 25 की शाम को स्वामीजी द्वारा अखाड़ा में हवन हुआ। मुझे बहुत अच्छा लगा। मुझे विश्वास हो चला कि मेरी शक्तिहीनता स्वामीजी की शारीरिक अस्वस्थता का ही परिणाम या प्रतिक्रिया थी। स्वामीजी वास्तव में उन दिनों अस्वस्थ थे कि नहीं, मैंने कहीं से सुनिश्चित नहीं किया। हो सकता है कि इस बारे में मेरी जानकारी गलत रही हो। लेकिन मेरा अनुभव गलत नहीं हो सकता। यदि मेरा अनुभव सही है, तो इससे यही प्रमाणित होता है कि स्वामीजी मेरे शरीर, मन और हृदय में बस गये हैं।

26 अक्टूबर 2011 को स्वामीजी अखाड़ा से आते हुए ज्योति मन्दिर के पास कोर्टयार्ड में मिले। इतने दिनों बाद मैं स्वामीजी के समीप खड़ा था। मन



प्रफुल्लित हो गया, चरण-रज भी प्राप्त कर धन्य हुआ। तभी स्वामीजी पूछते हैं, 'एस.एम.एस.मिला?' मैंने कहा, 'हाँ'। इतना काफी था मेरी शक्ति के स्तर को पुन: उच्च स्तर तक पहुँचाने के लिए।

आपकी ही प्रतीक्षा में था

29 अक्टूबर 2011 को दुर्गा-हवन समापन के बाद स्वामीजी गुरु पीठ के सामने खड़े होकर स्वामी मुक्तिधर्मा से बात कर रहे थे। मैं शिवपीठ और व्यास पीठ होकर उनके पास से जाने लगा तो वे मेरी ओर मुड़कर खड़े हो गये और कहते हैं, 'आपकी ही प्रतीक्षा में था।' फिर क्या था मैं भावातिरेक में उनके चरणों में लिपट गया। मुझे उनके चरणों में लिपट कर जो आनन्द आता है, वह वर्णानातीत है, उसे शब्दों में नहीं बाँधा जा सकता। मुझे ऐसा लगता

है कि उनके चरणों से होते हुए मैं उनके हृदय में जा बैठता हूँ। कभी लगता है कि वे स्वयं अपने चरणों और मेरे हाथों से होते हुए मेरे हृदय में आ बैठते हैं। वास्तविकता क्या है, मुझे पता नहीं है, मुझे वास्तविकता जाननी भी नहीं है। मेरी समझ से वास्तविकता ठोस होती है, उसमें तरलता नहीं होती, भाव नहीं होता, जबकि भावों में तरलता होती है, भाव आपको कहीं से कहीं पहुँचा देते हैं, उनकी कोई सीमा नहीं होती, उनमें कोई व्यवधान नहीं होता।

मैं उठ खड़ा हुआ तो पुन: एहसास हुआ कि मैं गुरु पीठ के सामने खड़ा हूँ। स्वामीजी से कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। उन्होंने भी कुछ और नहीं कहा। उन्होंने अपने एक छोटे से वाक्य 'आपकी ही प्रतीक्षा में था' में बहुत कुछ कह दिया। मेरे प्राणाधार, मेरे गुरु, मेरे भगवान मेरी प्रतीक्षा में रहते हैं, यह कोई विश्वास नहीं कर सकता, मैं स्वयं भी ऐसा कभी सोच नहीं सकता। किन्तु स्वामीजी कभी गलत या झूठ बोल ही नहीं सकते, इसलिये जो वे कहते हैं, उस पर विश्वास करना ही होगा। और जैसे ही इस पर विश्वास करता हूँ, मैं अपने को खो देता हूँ। मेरी औकात उनके चरणों के एक रज कण के बराबर भी नहीं है और वे मेरी प्रतीक्षा करें, यह पहेली है मेरे जीवन की। इस पहेली को सुलझा स्वामीजी ही सकते हैं। मेरे लिये तो उनका आदेश, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो' ही एक स्थायी आधार दिखायी दे रहा है।

मेरे द्वारा चरण स्पर्श की प्रक्रिया में प्यारी सी बाधा

नवम्बर 2011 के तीसरे सप्ताह के आरम्भ से ही मुझे दुर्गा-हवन में शामिल होने का सुअवसर मिला। इस बीच प्रतिदिन हवन समापन कर जब भी स्वामीजी बाहर आते, मेरे सामने खड़े हो जाते और मैं साष्टांग प्रणाम की मुद्रा में आकर प्यार से चरण स्पर्श करता रहा। कभी-कभी वे मुझे गुदगुदाते थे, कभी-कभी मेरी पीठ थपथपा देते थे। मेरा हर्ष द्विगुणित हो जाता था।

आज अखाड़ा में इस कार्यक्रम की संयोजिका स्वामी निर्मलानन्द थीं। मैं रोज की तरह पाठ पूरा कर जल्दी से उठा और हवन पीठ के पास जा खड़ा हुआ। इतने में स्वामी निर्मलानन्द कहती हैं, 'रोज-रोज यह सब नहीं। अपने स्थान पर बैठिये। मुझे कुछ सूचनायें भी देनी हैं।' मैं उनकी बात सुनकर कुछ ठिठका। मैंने उनसे किसी प्रकार की जिरह करना उचित नहीं समझा, क्योंकि मैं उस समय कुछ और ही भाव में था। मैं चुपचाप पीछे लौटा और पाठ करने वालों के लिए बने शेड के खम्भे से सट कर खड़ा हो गया।

स्वामीजी हवन पीठ से बाहर निकले और चुपचाप खड़े होकर मेरी ओर देखने लगे। उनके इस तरह देखने में मेरे लिये सन्देश था कि जल्दी से आकर पैर छुओ। मैं अपनी जगह से बिल्कुल भी नहीं हिला। तब स्वामीजी ने सीधे-सीधे सांकेतिक भाषा में, अर्थात् अपनी दायीं तर्जनी से अपने पैरों की ओर इशारा किया। इसके बाद मेरा अनुशासित मन कहीं दब गया और हृदय ने कहा, 'अब क्या देखता है, तेरे गुरु तुझे आमन्त्रित कर रहे हैं चरण रज लेने के लिये। किसी की मत सुन। वह जब आनन्द लुटा रहे हैं तो भरपूर लूट।' और मैं उनके चरणों में था।

चरण स्पर्श कर उठ खड़ा हुआ तब स्वामीजी से मैंने कहा, 'स्वामीजी! आज निर्मलानन्द जी ने मुझे एक तरह से बहुत जोर से डण्डा मारा है।' निर्मलानन्द जी पास ही खड़ी थीं, बोलीं, 'पर रोज-रोज यह ठीक नहीं है।' स्वामीजी हँस कर बोले, 'अच्छा, ठीक है। अब कल से नहीं।' सभी उपस्थित लोग खूब जोर से हँस दिये।

बाद में मैंने इस पूरी घटना पर चिन्तन किया तो पाया, जो मैं न जाने कब से देखता या अनुभव करता आया हूँ, वह है कि स्वामीजी मुझ पर अपनी कृपा की वर्षा कभी भी, कहीं भी करते रहने को तत्पर रहते हैं। दूसरी बात, जिसका मुझे पहले से अंदेशा था कि आश्रमवासियों को स्वामीजी द्वारा मुझ पर खुले आम कृपा की वर्षा करते रहना रुचिकर नहीं लग रहा है। मैंने उनसे पत्र में कहा भी था कि मेरे और आपके बीच जो कुछ है, उसे हम दोनों के बीच ही रहने दीजिये। सबको जताना कतई जरूरी नहीं है। लेकिन वे गुरु जो हैं, मेरी क्यों सुनने लगे? मुझे क्या है? यदि समस्या आप पैदा कर रहे हैं, तो उसका निदान भी आपको ही तो खोजना होगा।

स्वामीजी का मुझसे भागना और छिपना

शतचण्डी यज्ञ में भाग लेकर आश्रमवासियों का पहला समूह, जिसमें मैं भी शामिल था, 2 दिसम्बर 2011 को मुंगेर वापस आ गया था। स्वामीजी 30 नवम्बर को ही मुंगेर आ गये थे।

4 दिसम्बर को पुन: रिखिया जाने के लिये वे प्रात: कुटीर पहुँचे। धीरे-धीरे बड़ी संख्या में आश्रमवासी वहाँ स्वामीजी को विदा देने के लिये आते गये। जैसे ही स्वामीजी सीढ़ियों से नीचे उतरे, उनके साथ हम सब भी नीचे पहुँचे। स्वामीजी के बैठने के लिये गाड़ी का बायीं ओर का सामने



का दरवाजा खोला गया। इतने में बगल में खड़े स्वामी शंकारानन्द जी ने स्वामीजी को चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। उनके उठते ही मैंने भी घुटने सड़क पर टिका कर उनके चरण छूने का उपक्रम किया, किन्तु इस बीच स्वामीजी ने टिप्पणी की, 'बस, आधा ही!' तब मैंने कहा, 'अब पूरा कर लेता हूँ।' और मैं साष्टांग मुद्रा में सड़क पर लेट गया, तब मैंने देखा कि वे वहाँ से भागकर गाड़ी के पीछे चले गये हैं। मैं क्या करता? उठकर कर खड़ा हो गया और उनके पीछे भागा। वे ड्राइवर सीट की ओर पहुँचे, मैं उनके दरवाजे में अड़कर खड़ा हो गया। मैंने अनुभव किया कि महाराज जी आज पूरी तरह लीला करने के लिये तैयार दिख रहे हैं। फिर मैं ही क्यों संकोच करूँ? उन्होंने ड्राइवर की ओर का दरवाजा खोला, मैं तो पहले से बायीं ओर अड़ा खड़ा था। कोई और रास्ता न देख वे गाड़ी के आगे कुछ कदमों की दूरी पर खड़े हो गये। फिर ड्राइवर से कहते हैं, 'भई! गाड़ी आगे लाओ, यहाँ बहुत जाम लग गया है।'

इस पर मैंने कहा, 'स्वामीजी! अब आपके पास कोई चारा नहीं है।' और वे भोले-भाले छोटे बालक की तरह चुपचाप खड़े हो गये। मैंने सड़क पर लेट कर उनके चरणों को हाथों में लपेट लिया। कुछ क्षणों तक मैं आनन्द में डूबा रहा। इस बीच वे मेरी पीठ थपथापाते रहे और मुझे गुदगुदाते भी रहे। मैं उठा और वे गाड़ी में बैठ कर चल दिये।

आज की लीला अभूतपूर्व थी। मन में आता है कि भगवान कृष्ण गोपियों और ग्वालों के साथ इसी तरह से खेल रचाते रहे होंगे। भगवान कृष्ण ने जिस तरह अपनी लीलाओं से, अपने प्रेम से सबको पागल कर दिया था, क्या ऐसा ही कुछ हमारे निरंजन कृष्ण हमें करते दिखाई नहीं दे रहे हैं? मेरे स्वामीजी सचमुच लीलाधर हैं। मैं अपने सौभाग्य पर मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। पिछले जन्मों में पता नहीं मैंने कितना बैंक बैलेन्स छोड़ा होगा, जो इस एक ही जन्म में, बिना कुछ किये-धरे इतना कुछ पा लिया है। स्वामीजी ने अपना प्रेम इस कदर मुझ पर लुटाया है कि मेरी सारी इच्छाएँ/आकांक्षाएँ मिट ही गई हैं। मेरा हर विचार उन पर जाकर समाप्त हो जाता है। मेरी अब एक ही साध है कि जब वे मेरे प्राणों को अपने में पुन: समेट लें, तब मेरा सिर उनके चरणों पर ही हो। बस, यही साध लिये जी रहा हूँ।

नव वर्ष में चरण स्पर्श!

31 दिसम्बर की रात, 2011 की विदाई और 2012 के आगमन के अवसर पर विष्णु सहस्रनाम पाठ के साथ हवन सम्पन्न किया गया था। 1 जनवरी को प्रात: 8 बजे सुन्दरकाण्ड का पाठ आरम्भ हुआ और उसके बाद हनुमान चालीसा का 108 बार पाठ हुआ। समापन हुआ शाम 4 बजे। इस प्रकार लगातार 8 घंटे की यह दिव्य साधना पूरी हुई। 2 जनवरी को प्रात: दुर्गा हवन का अन्तिम पाठ सम्पन्न हुआ, मुझे भी पाठ करने वालों के समूह में स्थान दिया गया था।

प्रात: हवन के बाद कुछ देर के लिये स्वामीजी कुटीर लॉन में बैठे थे। मेरी सेवा सौभाग्यवश स्वामीजी के साथ ही थी। कुछ विशिष्ट भक्तजनों ने बारी-बारी से स्वामीजी को प्रणाम किया। मैं उनके सामने ही थोड़ी दूरी पर खड़ा था। मैंने इशारे से स्वामीजी से पूछा कि क्या मैं चरण स्पर्श कर सकता हूँ? इशारे से ही स्वीकृति मिली। मैं घुटनों के बल बैठकर चरणों पर झुका और हाथ बढ़ाये, तो स्वामीजी कहते हैं, 'आधा नहीं, पूरा!' मैं तुरन्त साष्टांग मुद्रा में आ गया, दोनों चरणों को हाथों में भर लिया। कुछ क्षण स्वर्गिक आनन्द में बीते। इतने में मैंने अनुभव किया कि वे मुझे गुदगुदाने लगे हैं। आनन्द द्विगुणित हो गया। मैं उठकर थोड़ी दूरी पर खड़ा हो गया।

अन्य भक्तगण उनसे मिलते रहे। कुछ ने उनके साथ फोटो खिंचवाने का आग्रह किया। उसी समय स्वामीजी ने अचानक अपनी टोपी उतार कर बिना कोई संकेत दिये हुए मेरी ओर उछाल दी। मैंने उसे लपक लिया।

फोटो हो जाने के बाद स्वामीजी ने टोपी वापस माँगी। इस पर मैंने कहा, 'नहीं, यह टोपी अब मेरी है। आपने स्वयं मुझे दी है।' स्वामीजी ने कहा, 'नहीं, ठण्ढ लग जायेगी।' मैंने प्रति उत्तर दिया, 'मेरे गुरु को कुछ नहीं हो सकता।' इस पर स्वामीजी बोले, 'गुरु को नहीं होगा, गुरु के शरीर को तो हो सकता है।' यह कह कर टोपी लौटाने का आग्रह करने लगे। तब मैंने कहा, 'ठीक है दिये देता हूँ। किन्तु उधार दे रहा हूँ।' और मैंने उन्हें टोपी लौटा दी। वहाँ उपस्थित सभी भक्तगण खूब हँसे।

दुर्गा हवन की पूर्णाहुति

1 जनवरी 2012 को मौसम बहुत अनुकूल नहीं था। रात को भी बूँदा-बाँदी होती रही। किन्तु 2 जनवरी को मौसम संयोग से सुधर गया। सूर्य देव के दर्शन भी हुए। 9 बजे हवन आरम्भ हुआ और विधिवत् 1 बज कर 15 मिनट पर पूर्णाहुति सम्पन्न हुई। तदुपरान्त कन्या भोज हुआ। आज का अनुष्ठान दिव्य रहा।

प्रेम में लड़खड़ाना नहीं होता

मैं 20 जनवरी 2012 को पादुका दर्शन आश्रम से गंगा दर्शन पहुँचा ही था कि देखा स्वामीजी कुटीर की ओर से चले आ रहे हैं। मैं उनके पास पहुँचा और हरि ॐ निवेदित किया।

स्वामीजी मुझसे पूछते हैं, 'कब आये?' मैंने कहा, 'सोलह को।' सुनकर स्वामीजी विनोद की भंगिमा में आ गये और कहते हैं, 'सुलह हो गई?' मैंने पूछ लिया, 'किससे?' इस पर हँसने लगे। फिर शिविर के बारे में पूछने पर मैंने उन्हें बताया। यह बातचीत करते-करते वे रैन-बसेरा के पास की सीढ़ियों तक पहुँच गए। मैंने चरण स्पर्श की आज्ञा माँगी तो कहते हैं, 'जल्दी कीजिये।' मेरे मुँह से पता नहीं कैसे निकल पड़ा, 'चलते हुए पैर छूने से आप लड़खड़ा सकते हैं।' ये बेतुके शब्द मैंने क्यों उच्चारित किये, मैं नहीं जानता। इस बीच मैंने चरण स्पर्श कर लिये। मेरे चरण स्पर्श करते ही वे मुड़ कर सीढ़ियों से उतरने लगे और उन्होंने कुछ कहा, जिसे मैं ठीक से सुन नहीं सका। इसलिये मैंने तुरन्त पूछा, 'क्या कहा आपने?' उनका उत्तर था, 'अब आप समझते रहिये।' और वे तेजी से गणेश विहार की ओर चल दिए।

अपने पीछे खड़े स्वामी तपोनिधि से मैंने पूछा, 'स्वामीजी ने क्या कहा?' उन्होंने बताया स्वामीजी ने कहा, 'प्रेम में लड़खड़ाना नहीं होता।'

यह सुनते ही मैं सन्न रह गया। यह क्या कह गये स्वामीजी! मैं काफी देर तक सोचता रहा। मैं उनके प्रेम का पात्र हूँ। यह क्या लीला है! मैं देख रहा हूँ कि स्वामीजी ने मेरी बुद्धि और मन का कचूमर निकाल दिया है, उनका भुर्त्ता बना दिया है। ये अब किसी लायक नहीं रह गये हैं। वे नित ऐसी-ऐसी लीलायें करते रहते हैं कि मत पूछिये। मैं कुछ समझ नहीं पाता हूँ। तब हार कर उस क्षण को पुन: जीने में लग जाता हूँ, आँसू बहा लेता हूँ, तो हृदय थोड़ा हलका हो जाता है। फिर जीवन जीने की औपचारिकता में लग जाता हूँ।

मैं वास्तव में जीना नहीं चाहता। जिऊँ तो आखिर क्यों जिऊँ? मनुष्य मन में पल रही इच्छाओं, कामनाओं के कारण जीता है। मेरी कोई इच्छा बची ही नहीं है। इस जीवन में मुझे इतना मिला है, जिसकी मैं तो क्या कोई भी कल्पना नहीं कर सकता। मैं जी रहा हूँ तो इसलिये कि वे चाहते हैं कि मैं जीऊँ। मुझे जीना ही होगा, जब तक मेरे स्वामीजी चाहेंगे। आज उन्होंने कह भी दिया है, 'प्रेम में लड़खड़ाना नहीं होता।' सच्चे प्रेम में अपनी सभी इच्छाओं और कामनाओं को अपने प्रेमी को सम्पूर्ण रूप से अर्पण कर देना होता है। मेरा चाहे जो हो, मेरे प्रिय की इच्छा सर्वोपरि रहनी चाहिये। उन्हें मेरा जाना अभी मंजूर नहीं है, मैं जानता हूँ। तभी तो वे मेरे जीवन के दिन बढ़ाते जा रहे हैं। 2010 के आरम्भ में मैंने पत्र में केवल लिखा था कि मैं जाकर, श्री स्वामीजी जहाँ जन्म लेंगे, उनके पड़ोस में फिर जन्म लेना चाहता हूँ। इस बात को लेकर उन्होंने कितने रूखे होकर मुझसे प्रश्न किया था, 'आपने पत्र में क्या लिखा है?' उस दिन उन्होंने अपने हृदय के भाव प्रकट कर डाले थे। उनके द्वारा इस प्रकार मुझसे पूछना यह प्रमाणित करता है कि वे मुझे अभी जाते हुए नहीं देखना चाहते हैं। जब तक वे चाहेंगे, मुझे किसी भी तरह जीवित रहना होगा। हाँ, मेरी एक इच्छा शेष है कि जब भी मेरे शरीर से प्राण निकलें, मेरा मस्तक उनके चरणों पर हो। उन्हें मेरी यह इच्छा पूरी करनी ही होगी, आखिर उन्होंने ही मुझे प्रेम करना सिखाया है।

भाव से ही सम्बन्ध बनते हैं, भाव ही मुख्य है

24 जनवरी 2012 को स्वामीजी प्रात: 8 बजे कुटीर लॉन में विराजित थे। मेरी सेवा वहीं पर थी। लगता है स्वामीजी ने जानबूझ कर मेरी ओर दृष्टि नहीं डाली थी। लोग आते रहे, उनसे मिलते रहे, बातें करते रहे, विदा लेते रहे।

भोजन के बाद, मैं उनके आसपास ही चहल-कदमी कर रहा था। मुझे देख कर कहते हैं, 'क्या चक्कर लगा रहे हैं?' मैंने कह डाला, 'आज आप मेरी ओर देख ही नहीं रहे हैं।' कहते-कहते मैंने चरण स्पर्श किया और उनके सामने ही बैठ गया। वे तब अकेले ही थे। मुझसे पूछते हैं, 'क्या बात है?' इस पर मैंने उनसे पूछा, 'आपने वह अनुभव पढ़ा था?' उनका उत्तर था, 'हाँ, पढ़ा था।' मैंने फिर पूछा, 'इस या ऐसे अन्य अनुभवों से मैं क्या समझूँ? या क्या प्रेरणा लूँ? कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ।' कोई सीधा उत्तर न देकर स्वामीजी मुझसे पूछते हैं, 'बहुत अच्छा अनुभव है, उसके आखिर में आपने क्या लिखा था?' मैंने कहा, 'मुझे याद नहीं है।' इस पर स्वामीजी, उत्साहित हो बोले, 'अच्छा है जो आपको याद नहीं है। आपने पहले एक पत्र में लिखा था कि श्री स्वामीजी के बाल सखा के रूप में आप जन्म लेना चाहेंगे। बहुत अच्छा भाव है। भाव से ही सम्बन्ध बनते हैं। यही मुख्य है। ज्ञान से किसी को कभी कुछ नहीं मिला है।'

मैंने जो पूछा था उसका उत्तर मुझे नहीं मिला। मैंने अनुभव किया है कि स्वामीजी ऐसे प्रश्नों के उत्तर सीधे-सीधे नहीं देते हैं। किन्तु जीवन के एक महान् सत्य का उद्घाटन उन्होंने इतनी सहजता से कर दिया कि भाव ही मुख्य है, भाव से ही सम्बन्ध बनते हैं, और भाव से ही जीवन में उपलब्धि का एहसास होता है। ज्ञान से किसी को कुछ नहीं मिला। इस तरह सीधे तौर पर मुझे इससे पहले केवल एक बार उन्होंने स्पष्ट सन्देश दिया था और वह था, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो।' आज का यह सन्देश भी मेरे स्मृति पटल पर स्थायी रूप से लिख दिया गया है। आज यह पहला अवसर था जब स्वामीजी ने मेरी प्रशंसा की और मुझे उनका कथन रास आया। नहीं तो प्रशंसा करने पर मैं रोता ही रहा हूँ। मेरे भावों पर उनकी दृष्टि है, मेरे भाव की वे कद्र कर रहे हैं, उसे उचित ठहरा रहे हैं, इससे मेरा हृदय आनन्दित हुआ है।

स्वामीजी का 52वाँ जन्मदिन

14 फरवरी 2012 को स्वामीजी का 52वाँ जन्मदिन था। इस दिन को हम बाल योग मित्र मण्डल के स्थापना दिवस के रूप में मनाते आ रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों से इसे 'बाल योग दिवस' के रूप में मनाने लगे हैं। आज स्वामीजी ने घोषणा की कि बाल योग दिवस अगले वर्ष राज्य स्तर पर, फिर देश भर में, और फिर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मनाया जायेगा।

स्वामीजी कुटीर लॉन में आकर बैठे। मैं सीधा उनके पास पहुँचा, उनके हाथों में एक पत्र थमाया और उनके चरणों में साष्टांग मुद्रा में लिपट गया। कुछ देर बाद मैं उठ खड़ा हुआ। मैंने जो पत्र लिखा था, उसके मुख्य अंश हैं – 'आपके इस धरा पर, इस भौतिक शरीर में अवतरण की 52वीं जयन्ती पर मैं आपको क्या समर्पित करूँ, समझ से परे है, क्योंकि आपने मेरे पास मेरा कहने लायक कुछ छोड़ा ही नहीं है। सब कुछ आपने अधिगृहीत कर लिया है। बस, एक अभिलाषा है कि मैं जिऊँ तो आपकी सेवा के लिये, जब मरूँ तो आपके चरण मेरे शरीर पर हों और यदि जन्म लूँ तो आपके चरणों के सान्निध्य में ही रहूँ। आपको इस शरीर में कम-से-कम 125 वर्ष रहना है, जितने वर्ष श्री कृष्ण इस धरा पर रहे थे; इसे भूलें नहीं।'

लोग स्वामीजी से मिलने के लिये लगातार आते जा रहे थे। मैं थोड़ी दूरी पर सामने खड़ा था। मेरी निगाह स्वामीजी पर ही टिकी थी। उस समय उनके हाथों में चाकलेट और पॉपिन्स थे। स्वामीजी मुझे छेड़ते हुए कहते हैं, 'क्या बात है? आपकी निगाह चॉकलेट पर ही टिकी हुई है।' मैंने कहा, 'मेरी निगाह चॉकलेट पर नहीं, आप पर टिकी हुई है। चूँकि चॉकलेट आपके हाथों में है, इसलिये उसे भी देख रहा हूँ।' स्वामीजी हँसे, अन्य सब लोग भी हँसे। फिर उन्होंने पॉपिन्स का पैकेट मुझे थमा दिया भक्तों को देने के लिये।

मैं भोजन कर कुटीर लॉन आया तो देखा कि स्वामीजी कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के साथ भोजन कर रहे हैं। मुझे देख कर बोल उठे, 'आत्माभिषेक जी हमेशा लेने के लिये कुछ खोजते रहते हैं।' मैंने टिप्पणी की, 'नहीं, स्वामीजी! मेरी नजर आपको ही खोजती रहती है। मेरी नजर आप पर ही टिकती है।'

मैं बात करते-करते थोड़ा पास चला आया था। स्वामी शंकरानन्द जी ने अपने और स्वामी अरुन्धती के बीच मेरे लिये थोड़ी जगह बनायी और मैं वहाँ बैठ गया। मैंने दोहराया, 'मेरी नजर अब स्वामीजी पर ही टिकती है, मेरी आँखों में मोतियाबिन्द हो गया है। अब इन आँखों से स्वामीजी के अलावा और कुछ दिखता ही नहीं है।' इस पर स्वामी शंकरानन्द जी कहते हैं, 'स्वामीजी को नजर लग जायेगी।' मैंने कहा, 'नहीं, मेरी नजर उन्हें कभी नहीं लगेगी।' इसी बीच स्वामीजी कहते हैं, 'आँखों की शल्यक्रिया करनी पड़ेगी।' मैंने कहा, 'तो कर दीजिये न!'



इतने में स्वामीजी ने अपनी थाली, जिसमें एक रोटी, थोड़ी दाल और सब्जी थी, मुझे दे दी। थाली पाकर मेरे आनन्द का ठिकाना न रहा। फिर शंकरानन्द जी मुझे कुछ देने लगे तो मैंने टोका, 'यह सब उधर से, स्वामीजी की ओर से आना चाहिये।' इस पर स्वामीजी कहते हैं, 'शंकरानन्द जी हमारे एजेण्ट हैं। ले लीजिये।' मैंने ले लिया। इसी बीच स्वामी अरुन्धती ने भी कुछ दिया और मुझसे कहती हैं, 'आप बड़े कृपापात्र हैं।' मैंने कहा, 'हाँ, अवश्य हूँ।' इसी बीच स्वामीजी अचानक बोल उठते हैं, 'मैं आत्माभिषेक जी से दूर ही रहने की कोशिश करता हूँ।' मैंने कहा, 'स्वामीजी! यह कभी हो ही नहीं

सकता।' इस पर स्वामीजी बोल उठे, 'अभी तक तो सफल रहा हूँ।' मैंने कहा, 'आप व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। आप मुझसे दूर रह ही नहीं सकते। इसकी कोई संभावना ही नहीं है।'

उक्त बातें स्वामीजी ने क्यों कहीं, मैं नहीं जानता। किन्तु मेरे लिये विशेषकर आज का दिन अविस्मरणीय बन गया।

ये तो हमेशा छीनने की कोशिश में रहते हैं

18 फरवरी 2012 को स्वामीजी करीब दो बजे कुटीर लॉन में आकर बैठे। सामने दर्शनार्थी थे, जो बारी-बारी से अपनी-अपनी बात कह रहे थे। इसी बीच स्वामीजी अचानक मुझसे कहते हैं, 'मुम्बई के एक सज्जन की कुछ आध्यात्मिक जिज्ञासायें हैं; आप इनसे बात कर लीजिये।'

मैंने पास जाकर उनसे बात की। एक प्रश्न के बारे में अपनी समझ से उन्हें बताया, सुझाव दिया। उनका दूसरा प्रश्न था, 'मैं नौकरी छोड़कर अपना काम शुरू करना चाहता हूँ। इसके लिये स्वामीजी का आशीर्वाद चाहिये।' मैंने उनसे स्पष्ट रूप से कहा कि आशीर्वाद तो स्वामीजी ही दे सकते हैं।

स्वामीजी इस बीच शिवालय जाने के लिये उठ खड़े हुए। मैंने खड़े-खड़े ही उनकी बात स्वामीजी से कह दी और साथ ही कहा, 'आशीर्वाद तो आप ही दे सकते हैं।' बाद में जोड़ा, 'यह मुझे सौंपे गये अधिकार में नहीं आता है।' इस पर स्वामीजी मुझे इंगित करते हुए कहते हैं, 'ये तो हमेशा छीनने की कोशिश में रहते हैं।' मैंने पीछे से टिप्पणी की, 'आप तो स्वयं कह चुके हैं कि मैं छोड़ने वाला नहीं हूँ, फिर यह सब बोलने का क्या अर्थ है। वे गाड़ी में बैठे और चल दिये।

स्वामीजी के उक्त शब्दों से जुड़ी कहानी इस प्रकार है – 2009 शारदीय नवरात्रि-पंचमी के दिन स्वामीजी रिखिया के लिये चले थे। मुझे भी साथ चलने का आदेश मिला था। मैं गंगादर्शन से एक स्फटिक माला लेकर चला था। स्वामीजी जब थोड़े खाली हुए तो मैंने वह स्फटिक माला उनके हाथ में दी। हाथ में माला आते ही वे उसे अपनी ऊर्जा से आवेशित करने के लिए अपनी अंगुलियों में लपेटने लगे, तो मैंने उन्हें टोकते हुए कहा, 'ऐसे नहीं।' तो मुझसे पूछते हैं, 'फिर कैसे?' मैंने कहा, 'इसे आप पहन लीजिये और नवमी के दिन मुझे प्रसादस्वरूप दे दीजियेगा।' उन्होंने वह माला तुरन्त ही अपने गले में डाल ली।

दो दिन बीत चुके थे। स्वामीजी के शरीर पर मैंने माला नहीं देखी, कारण था कि ऊपर से उन्होंने धोती ओढ़ रखी थी। मैंने सोचा कि कहीं स्वामीजी ने माला उतार तो नहीं दी है। मैं सुखमन गेट पर खड़ा था, इसी बीच स्वामीजी उधर से निकले तो मैंने प्रश्न कर ही दिया, 'स्वामीजी! मेरी माला?' स्वामीजी वहीं खड़े-खड़े अपनी धोती दोनों हाथों से ऊपर उठाकर अपने दायें हाथ की तर्जनी से अन्दर पहनी माला को दिखाते हुए कहते हैं, 'यह रही आपकी माला।' मैंने उनसे यह आशा नहीं की थी कि वे मेरी बात को इतनी गंभीरता से लेंगे। वे कह सकते थे कि माला अन्दर पहनी है। उसके बाद वे अखाड़ा जाने के लिये सड़क पर पहुँचे। वहाँ खड़े हो मेरी ओर मुड़ते हैं और उद्घोषित करते हैं, 'मुझे पता था कि आप छोड़ने वाले नहीं हैं।'

उनके द्वारा कहे गये इस वाक्य पर मैंने चिन्तन किया। मेरी दृष्टि में यह एक सारगर्भित वक्तव्य है। ऐसा आखिर उन्होंने क्यों कहा? यह मेरी सराहना है या मेरे भाव में कमी? मैंने उनके इसी वक्तव्य की याद उन्हें आज दिलायी थी।

आज शाम का कार्यक्रम पादुका दर्शन में हुआ था। कार्यक्रम के बाद स्वामीजी गंगा भवन के सामने स्थित लॉन में पहुँचे तो मैं भी कुछ लोगों के साथ वहाँ पहुँच गया। मुझे देखते ही स्वामीजी कहते हैं, 'आप यहाँ भी?' मैंने कहा, 'स्वामीजी! मैं तो बैकुण्ठवासी हूँ।' इस पर स्वामीजी कहते हैं, 'आप फिर यहाँ कुछ लेने आये हैं?' पता नहीं कैसे मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'मेरा आप पर स्वामीत्व होने वाला है!' स्वामीजी मुझसे कहते हैं, 'आप मुझे धमका रहे हैं?' मेरे मुँह से फिर कुछ विचित्र से शब्द निकले, 'मैं धमका नहीं रहा हूँ, आगे जो होने वाला है, वही आपको बता रहा हूँ।' यह बातचीत यहीं रुक गयी।

बाद में मैंने चिन्तन किया तो पाया कि मैं अब पूरी तरह पागल हो गया हूँ। क्या उचित है, क्या अनुचित; क्या बोलना चाहिये, क्या नहीं, इस सबका ज्ञान मुझे नहीं रह गया है। जिसकी ऐसी स्थिति बन जाती है, उसी को तो लोग पागल कहते हैं। मैं अपने स्वामीजी को क्या-क्या बोल गया, आखिर क्यों?

इन प्रश्नों पर भी चिन्तन किया तो पाया कि जब मैं स्वामीजी के सामने होता हूँ, तो आपे में नहीं रहता हूँ। यदि ऐसा नहीं होता तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि मैं उनके लिये ये शब्द बोल सकता हूँ। इस प्रकार का अनुभव पहले भी कई बार हो चुका है। उनसे बोल चुकने के बाद मैं सोचता रहता हूँ कि आखिर मैंने ऐसा क्यों कहा। संभवत: वे चाहते हैं कि मैं अपनी बुद्धि का उपयोग करना बन्द कर दूँ और सहज रूप में रहने लग जाऊँ।

आज भी जब मैं उस दिन की बातचीत को याद करता हूँ तो सहम जाता हूँ कि आखिर अपने प्राणों से अधिक प्यारे, भगवत् स्वरूप अपने स्वामीजी को मैंने ये शब्द कहे तो क्यों कहे। वैसे पढ़ा है, सुना भी है कि प्यार में कुछ गलत नहीं होता, प्यार में सब जायज ही माना जाता है, माना जाना चाहिये। मेरे मुँह से ये शब्द इसलिये तो नहीं निकले हैं कि वास्तव में यही घटित होने जा रहा है। मेरे और उनके बीच की दूरी सिमटती जा रही है। संभवत: वह दिन दूर नहीं जब ऐसा हो ही जाय। इसका उत्तर स्वामीजी के पास ही है। मैं तो उनके हाथ की कठपुतली मात्र हूँ। वे जैसा नचायेंगे, नाचूँगा। जब तक नचायेंगे, नाचता रहूँगा। जब सुला दें, सो जाऊँगा। काश, ऐसा ही हो!

आश्रम में स्वामीजी की होली–मेरा परम सौभाग्य

7 मार्च 2012 को स्वामीजी अचानक रिखिया चल दिये। होली पर उनका अचानक चले जाना मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा। मन कुछ उदास ही रहा।

9 मार्च 2012 को प्रात: मैं मेन गेट पर था तो एक सुखद आश्चर्य का सामना हुआ। प्रात: 8.05 पर स्वामीजी वापस आ गये। मन प्रफुल्लित हो गया। फिर याद आयी कल शाम स्वामी सूर्यप्रकाश द्वारा की गयी घोषणा– कल प्रात: 9.30 बजे कुछ विशेष कार्यक्रम होगा।



कुटीर लॉन में सभी के लिये व्यवस्था की गई थी। मुझे स्वास्थ्य रक्षा सत्र के प्रतिभागियों का परिचय कराने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। स्वामीजी का आगमन हुआ। वे बहुत प्रफुल्लित लग रहे थे।

स्वामी सूर्यप्रकाश ने यह कह कर औपचारिक कार्यक्रम का आरम्भ किया कि स्वास्थ्य रक्षा सत्र में ग्यारह लोग आये हैं। सभी ने खड़े होकर स्वामीजी को हरि ॐ कहा। इस पर स्वामीजी ने टिप्पणी की, 'ये एकादश रुद्र हैं।' फिर स्वामीजी पूछते हैं, 'इनके शिक्षक कौन हैं?' मैं बोल पड़ा, 'मैं यहाँ हूँ, स्वामीजी! और मैं द्वादश हूँ।' स्वामीजी का उद्घोष, 'आप द्वादश ज्योतिर्लिंग हैं।' मैंने इस पर कह दिया, 'आप जो बनाना चाहें, बना दें।'

इस प्रकार बड़े अनूठे ढंग से कार्यक्रम आरम्भ हुआ। इस बीच सबने आश्चर्य से देखा कि स्वामीजी ने अपनी कुर्सी सिर पर उठा ली और यज्ञशाला की ओर चल दिये। हम सब भी उनके पीछे-पीछे चल दिये। वहाँ जाकर हम सब स्वामीजी के सामने जमीन पर ही बैठ गये। मैं उनके ठीक सामने बैठा था। स्वामीजी की मुद्रा में शरारत झलक रही थी। मुझसे कहते हैं, 'यहाँ रास्ते में क्यों बैठे हैं?' मुझे कोई उत्तर नहीं सूझा, फिर मैं वहीं पर साष्टांग मुद्रा में लेट गया और उनके चरणों को बाहों में भर लिया और आनन्द में डूब गया।

कुछ क्षण बीते होंगे कि मैंने अनुभव किया (काश! देखा भी होता) कि स्वामीजी कुर्सी से उठकर मेरे लेटे हुए शरीर पर झुक गये हैं। संभवत: उन्होंने अपने दोनों घुटनों को ठीक मेरी बगल में जमीन पर टिकाया, अपने दोनों हाथों से मेरे पैरों को पकड़ा और घुटने से पीछे की ओर मोड़ दिया था। उनके द्वारा पैरों को पकड़े जाने और मोड़ने का स्पष्ट अनुभव मैंने किया था। यह विचार मन में आते ही कि स्वामीजी क्या किये जा रहे हैं, मैं अर्द्ध विक्षिप्तावस्था में पहुँच गया। मेरे पैरों को उन्होंने अपने हाथों में पकड़ा हुआ है। इतनी अनहोनी बात कैसे संभव है! आज स्वामीजी यह उल्टी गंगा क्यों बहा रहे हैं? उन कुछ क्षणों में मेरे मन में अनगिनत प्रश्न और आशंकायें उभरीं। समाधान की तो कोई संभावना ही नहीं थी।

कुछ देर बाद स्वामीजी उठकर पुन: अपनी कुर्सी पर बैठ गये। उसके बाद मैं भी उठा और सामने ही बैठ गया। मैं अभी भी पूरे होश में नहीं था। उस मन:स्थिति से बाहर निकलने में थोड़ा समय लगा।

फिर शुरू हुआ अबीर-गुलाल लगाने का सिलसिला। स्वामीजी ने अनेक लोगों को लगाया। लोगों ने उन्हें भी लगाया। मैंने पूछा तो 'न' कह दिया।

सबको लगा चुकने के बाद स्वामीजी खड़े हुए तो मैंने फिर पूछा, 'मैं भी आपको गुलाल लगा दूँ?' उत्तर मिला, 'अभी नहीं।' मैं चुप रहा। इसी बीच सत्यमूर्ति एक प्लेट में गुलाल लेकर वहाँ पहुँच गये। स्वामीजी ने पूछा, 'यह किसे लगाना है?' सत्यमूर्ति कहते हैं, यह इनके (मेरी ओर इशारा करते हुए) लिये है। स्वामीजी ने मेरे पूरे सिर, चेहरे और गले पर गुलाल लगाया। मुझे आनन्द आ रहा था। इस बीच किसी ने उन्हें गुलाल लगाना चाहा तो वे अचानक मेन बिल्डिंग की ओर भागे।

मैं भी कुछ क्षण बाद ज्योति मन्दिर के पास पहुँचा, तब देखा कि स्वामीजी सीढ़ियों के नीचे कार पार्क में खड़े हुए हैं। अन्य सभी धीरे-धीरे वहाँ पहुँच गये। मैंने स्वामीजी से कहा, 'आप रणछोड़ हैं, कलियुगी रणछोड़। इस पर स्वामीजी उलाहना देते हुए मुझे कहते हैं, 'आपने मुझे कलियुगी कहा है।' मैंने फिर कहा, 'हाँ, आप कलियुगी कृष्ण रणछोड़ ही तो हैं। लड़ाई का मैदान छोड़ कर भागने वाले।'

कुछ देर बाद मैं सीढ़ियाँ उतर कर उनके पास पहुँचा। मैंने फिर पूछा, 'अब लगा लूँ?' इस पर स्वामीजी मुस्कुराकर कहते हैं, 'अभी नहीं, अगले वर्ष!' इस पर मैंने निर्णयात्मक रुख लेते हुए कहा कि मैं इतनी प्रतीक्षा करने को तैयार नहीं हूँ। मेरा इतना कहना था कि स्वामीजी कार पार्क के दूसरे छोर की ओर भागने लगे। मैं भी उनके पीछे-पीछे भागा। उन्होंने वहाँ खड़ी एक कार का चक्कर लगाया। मैंने भी चक्कर लगाया। जब वे दूसरा चक्कर लगा रहे थे तो मैं यकायक उलटी दिशा में दौड़ पड़ा। और अगले ही क्षण वे मेरी बाहों में थे। हमारे शरीर सटे हुए थे और चेहरे आमने-सामने थे, निगाहें भी एक-दूसरे पर थीं। कुछ क्षण इस स्वर्गिक आनन्द में बीते। कल्पनातीत था वह अनुभव। इस प्रकार 2012 की होली मेरे लिये अभूतपूर्व और विलक्षण अनुभव लेकर आयी।

भगवान कृष्ण की लीलायें जग प्रसिद्ध हैं। उन्होंने क्या नहीं किया? जिसने भी उनकी लीलाओं का बौद्धिक विश्लेषण किया, कहीं नहीं पहुँचा, बीच में उलझ कर रह गया। हमारे स्वामीजी भी तो कलियुग के कृष्ण हैं। इन्हें समझना भी कृष्ण को समझने से कम मुश्किल नहीं है। हम भक्तगण उनके साथ बिताये प्रत्येक क्षण को बार-बार जीने और उनके द्वारा बताये या सुझाये गये रास्ते पर चलने का प्रयासभर करते रह सकते हैं। हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है। ये लीलाएँ उनकी कृपा की वर्षा ही मानी



जानी चाहिये और जिन पर कृपा की वर्षा हो रही है, उन्हें अपने को धन्य मानना चाहिये।

मुझ में स्वामीजी का अच्छा शिष्य होने का एक भी गुण नहीं है, शरीर से उम्र के इस दौर में कुछ विशेष करने की स्थिति में नहीं हूँ, बुद्धि से हीन हूँ, यह बात स्वामीजी भी अच्छी तरह जानते हैं। ज्ञान का जहाँ तक प्रश्न है, मैं पूर्ण अज्ञानी हूँ, एक भी शास्त्र का अध्ययन मैंने नहीं किया है। थोड़ी कोशिश की, कुछ पल्ले नहीं पड़ा। हाँ, एक बात सच है कि श्री स्वामीजी और स्वामीजी की कही बातें समझ में आती रही हैं। जो कुछ समझ पाया हूँ, उस पर चलने

का प्रयास, अपनी शक्तिभर कहूँ या अपने प्रारब्धवश कहूँ, करता आ रहा हूँ। मेरा यह प्रयास भी किस हद तक सफल रहा है, कहना मुश्किल है। हाँ, मेरी समझ से मुझमें एकमात्र गुण है कि मेरा हृदय बहुत जल्दी पिघलता है। और मेरे हृदय की वाणी, आँसुओं के रूप में जब-तब बहती ही रहती है। मुझे लगता है कि मेरे स्वामीजी को यह भा गया है। उन्हें मेरी एक और बात अच्छी लगी है, और वह है मेरा बुद्धिहीन होना।

क्या सही है, क्या सही नहीं है, मैं इन प्रश्नों में भी क्यों उलझूँ? प्रारब्ध ने स्वामीजी को मेरे जीवन में ला खड़ा किया है। बस, यही सत्य है। मुझे ऐसा लगता है कि प्रत्यक्ष रूप से मैंने स्वामीजी को पाने के लिये कोई प्रयास नहीं किया है। वे मेरे जीवन में आये, आते ही चले गये और उन्होंने मुझे समग्र रूप से आच्छादित कर लिया। उनका सान्निध्य, कृपा, प्रेम, जो कुछ और जितना कुछ मिलता है, मिल रहा है, उसका भरपूर आनन्द उठाने भर से मेरा सम्बन्ध होना चाहिये।

होली उत्सव के दिन प्रात: कार्यक्रम के समापन के समय स्वामीजी ने मुझसे कहा, 'दोपहर 2 बजे यज्ञशाला में फिर मिलेंगे।' हम फिर 2 बजे यज्ञशाला में एकत्र हुए, स्वामीजी भी आये। पहले होली के कुछ गीत गाये गये। फिर लोगों को दो समूहों में बाँट कर अन्ताक्षरी प्रतियोगिता शुरू हो गई।

अचानक स्वामीजी वहाँ से चले गये। मुझे आन्तरिक रूप से आभास हुआ कि निश्चय ही स्वामीजी किसी नयी योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिये अंतिम स्वरूप देने गए हैं। कुछ ही देर में स्वामी सूर्यप्रकाश ने घोषित किया कि अब अन्ताक्षरी का कार्यक्रम मुख्य भवन के ठीक सामने, कोर्ट यार्ड में होगा। हम लोग वहाँ पहुँचे और सीढ़ियों से दायें और बायें, दोनों समूह बैठ गये। इतने में पहली मंजिल के छज्जे से अचानक बाल्टिओं से पानी उड़ेला जाने लगा। नीचे बैठे सभी लोग पानी से तर-बतर हो गए। मुझे कुछ संकेत मिल ही चुका था, इसलिये मैं सीढ़ियों पर बैठा था और भीगने से बच गया।

इस सारी योजना के सूत्रधार स्वामीजी ही थे। यह होली हम जीवनभर याद रखेंगे। मेरे लिये तो विशेषकर यह होली कभी न भुला सकने वाली होली हो गई है। जब तक जीवन चल रहा है, आने वाली प्रत्येक होली को, इस बार की होली में की गयीं स्वामीजी की लीलायें याद आती ही रहेंगी।

स्वामीजी की पैठन तीर्थ यात्रा

15 अप्रैल 2012 को स्वामीजी का सत्संग था। स्वामीजी ने अपनी तीर्थ यात्रा – पैठन (महाराष्ट्र) के विट्ठल (कृष्ण) मन्दिर के दर्शन तथा कबीर और उनके पुत्र कमाल की समाधि के बारे में बताया।

स्वामीजी ने बताया कि चैत्र नवरात्रि अष्टमी की रात को उन्होंने भगवान कृष्ण की आवाज सुनी, 'बहुत दिनों से प्रतीक्षा में हूँ, जल्दी आ जाओ।' और उसी समय उन्होंने पैठन जाने का कार्यक्रम बना लिया। उन्होंने बताया कि वहाँ दर्शन कर बहुत आनन्द आया।

पृथ्वीराज चौहान के वंश की कथा – एक बार फिर

20 मई 2012 को भक्तों से मिलने के लिये स्वामीजी ने समय निर्धारित किया था। परिचय के दौरान किसी पृथ्वीराज नाम के युवक ने खड़े होकर स्वामीजी को 'हरि ॐ' कहा। स्वामीजी के साथ स्वामी मुक्तानन्द भी, जो इन दिनों 'श्रीमदभगवद्गीता' पर प्रवचन दे रहे थे, उपस्थित थे। पृथ्वीराज नाम सुनते ही स्वामीजी को पृथ्वीराज चौहान की याद हो आयी और वे मेरी ओर इंगित करते हुए स्वामी मुक्तानन्द से कहते हैं, 'ये पृथ्वीराज चौहान के वंशज हैं।' स्वामीजी के पूछने पर मैंने बताया कि मैं उनकी तीसवीं पीढ़ी में हूँ। स्वामी मुक्तानन्द जी ने इस चर्चा में रस लिया। उन्होंने कहा कि पृथ्वीराज चौहान अजमेर के राजा थे। मैंने उनसे निवेदन किया कि अजमेर के राजा उनके पिता थे, किन्तु पृथ्वीराज चौहान को उनके नाना अनंगपाल ने, जो दिल्ली के राजा थे, गोद ले लिया था, क्योंकि उनके कोई पुत्र नहीं था और इस तरह पृथ्वीराज दिल्ली के सम्राट् बने।

यह संभवत: चौथी या पाँचवीं बार है कि स्वामीजी ने मेरी उपस्थिति में ऐसी चर्चा की हो। एक बार शतचण्डी यज्ञ के समय मैं तपोवन में सेवा में था। वहाँ स्टेज का काम चल रहा था। वहीं सीमेंट के प्लेटफार्म पर डेकोरेटर की कुछ दरियाँ भी पड़ी थीं। ठण्ड से बचने के लिये एक लाल रंग की दरी पर बैठ गया। थोड़ी देर में स्वामीजी उधर आये। स्वामीजी कुछ देर बाद सीमेंट प्लेटफॉर्म पर ही बैठ गये तो श्रीमुखानन्द जी ने उनसे कहा कि उस दरी पर बैठ जाइये। मैं स्वामीजी को देख कर उठ खड़ा हुआ था। स्वामीजी टिप्पणी करते हैं, 'नहीं, नहीं, यह पृथ्वीराज चौहान की गद्दी है, इस पर मैं कैसे बैठ सकता हूँ?' और हम दोनों के साथ स्वामीजी भी हँस पड़े। स्वामीजी फिर कहते हैं 'आप जानते नहीं हैं! ये पृथ्वीराज चौहान के वंशज हैं।'



क्षमा की बात क्यों? अपने बाल भाव में रहिये!

28 मई 2012 की दोपहर को स्वामीजी अखाड़ा की ओर जा रहे थे। उन्हें अकेला देख कर मैं उनके साथ चल दिया। हरि ॐ निवेदित कर मैंने उनसे पूछा, 'मेरे प्राणाधार' शीर्षक से आपसे जुड़े अपने संस्मरणों को लिखने की आज्ञा मैंने मांगी थी। आदेश की प्रतीक्षा में हूँ। कुछ क्षण बाद स्वामीजी बोले, 'ठीक है, लिखिये।'

मैंने फिर पूछा, 'आपने चक्षुषोपनिषद् देखा? उसकी एक प्रति मैंने पत्र के साथ संलग्न की थी। मुझे यह 2007 में, जब से मुझे आँखों की समस्या हुई है, मेरे एक ज्योतिषी मित्र से प्राप्त हुई थी। किन्तु आपसे इस विषय पर चर्चा नहीं हो पायी और आपसे बिना आदेश प्राप्त किये मैं कोई साधना करना नहीं चाहता, इसलिये यह मेरे पास अभी तक सुरक्षित रही है।' स्वामीजी ने कहा कि उसकी एक प्रति और दे दीजिये।

तब तक हम अखाड़ा गेट तक पहुँच चुके थे। तभी मैंने पूछा, 'आपने मुझे क्षमा कर दिया है न?' इस पर उनका दार्शनिक भाव में उत्तर मिला, 'क्षमा की बात क्यों? अपने बाल भाव में रहिये।' मैं प्रसन्न हुआ, क्योंकि यह निर्देश पाकर मेरे मन का बोझ पूरी तरह उतर गया।

मैंने चरण स्पर्श किये और चल दिया। मैं चिन्तन करने पर विवश हुआ कि स्वामीजी ने मुझे क्या संदेश दिया है उसे मैं कैसे आत्मसात् करूँ? एक

सन्देश तो स्पष्ट था कि वे मुझसे रुष्ट नहीं हैं, यह केवल मेरी कल्पना थी। वे इन सब से बहुत ऊपर उठ चुके हैं, यह मैं क्यों नहीं समझ रहा हूँ। दूसरा सन्देश मेरे पूरे जीवन को, व्यवहार को, चिन्तन को दिशान्तरित करने के लिये है।

स्वामीजी ने मुझे कुछ बहुत ही स्पष्ट गंभीर सन्देश दिये हैं। उन्हें मैं आज एक साथ याद कर लेना चाहता हूँ। उन सन्देशों को मोटे अक्षरों में लिख कर सामने रखना चाहता हूँ, जिससे प्रतिदिन कम-से-कम एक बार उन पर अवश्य दृष्टिपात हो सके। ऐसा हो सकने पर संभावना है कि ये सन्देश मेरे जीवन का अंग बन जायें। उनकी कृपा से यदि मैं ऐसा करने में सफल होता हूँ तो शायद उनका एक लघुतम शिष्य कहला सकूँ। अभी मैं शिष्यत्व से बहुत दूर हूँ। हाँ, अपने को उनका भक्त अवश्य कह सकता हूँ। ये सन्देश हैं –

'सब कुछ गुरु पर छोड़ दो!' यह सबसे गंभीर, गुरुतर और सार्वभौमिक सन्देश है। यह सन्देश ही नहीं, अखण्ड आशीर्वाद भी है। यह सन्देश देकर मेरे जीवन का समस्त भार उन्होंने अपने ऊपर लेने की घोषणा भी कर डाली है। गुरु की ओर से इससे बड़ा आश्वासन भी हो सकता है? मेरी समझ से तो 'नहीं'।

"स्वामी आत्माभिषेक जी को सेवा, साधना, समर्पण, संयम और स्वाध्याय के लिये मंगल कामनायें"

ॐ प्रेम

– स्वामी निरंजन 26-11-10

ये शब्द उनकी लेखनी ने लिखे थे, उनके ही एक विशिष्ट फोटो पर, जो मुझे बहुत अधिक पसन्द आयी थी। यह सन्देश मूलत: उनका आशीर्वाद है और गुरु द्वारा दिया गया आशीर्वाद वास्तव में उनका संकल्प होता है। उनका संकल्प फलीभूत न हो, यह कैसे हो सकता है! हाँ, मुझे उनके आशीर्वाद के इन शब्दों को सदैव याद रखना होगा।

- 'क्षमा की बात क्यों? बाल भाव में रहिये।' क्षमा की बात क्यों, कह कर उन्होंने मुझे अभयदान दे डाला है, और 'बाल भाव में रहिये' कह कर उन्होंने ऊपर कहे दोनों सन्देशों को जीवन में उतारने का मार्ग प्रशस्त



किया है। बुद्धि को पीछे रखकर, सहज और सरल बने रहना ही बाल भाव है।

- भाव से ही सम्बन्ध बनते हैं। भाव ही मुख्य है। ज्ञान से किसी को कभी कुछ नहीं मिला है।' यह सन्देश भी एक जीवन दर्शन है। उनके जैसे सिद्ध सन्त के श्री मुख से निःसृत ये शब्द जीवन का निचोड़ कहे जा सकते हैं। ये सन्देश कहे तो मुझसे गये हैं, किन्तु व्यक्तिगत बिल्कुल भी नहीं हैं। ये सन्देश स्वामीजी की ओर से सबके लिये हैं।
- 17 अगस्त 2008 को पाटलीपुत्र एक्सप्रेस में नाश्ता करते-करते अचानक स्वामीजी ने उद्घोषणा की, 'जीवन में जो होता है, सब पूर्व निर्धारित है। संसार में कुछ भी संयोगवश नहीं होता।' ये शब्द कहकर स्वामीजी ने जीवन के रहस्यमय पक्ष पर से पर्दा उठाया है।

मुझे इन संदेशों को रोज पढ़ना होगा। मेरे लिये यही गीता का पर्याय होगा। यही रामायण का सार होगा। और सबसे बड़ी बात कि यदि मैं ऐसा कर पाता हूँ तो मेरे प्राणाधार, मेरे आराध्य, मेरे भगवान मुझ पर प्रसन्न होंगे। और उनकी प्रसन्नता ही मेरा सबसे बड़ा धन है।

नेत्रों के लिये साधना

28 जुलाई 2012 को प्रात: 8 बजे अपने निवास से निकलकर मेन गेट की ओर पहुँचा। वहाँ शिवरूपानन्द और धर्मचैतन्य बिल्कुल शान्त खड़े थे। मैंने

उन्हें हरि ॐ कहा और उन्होंने धीरे से हरि ॐ कहा। मैंने सोचा कि ये लोग इतने गंभीर क्यों बने हुए हैं, तभी मेरी निगाह ऊपर दोनों मार्गों के मिलन स्थल पर खड़ी सूमो गाड़ी पर पड़ी और मैंने उनसे पूछ लिया कि यह गाड़ी यहाँ क्यों खड़ी है। उन्होंने बताया कि इसमें स्वामीजी बैठे हैं और स्वामी कृष्णप्रिया की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

मैं गाड़ी की ओर चला ही था कि गाड़ी का दरवाजा खोल कर स्वामीजी बाहर आ गये। मैं प्रसन्न हो गया और मैंने हरि ॐ निवेदित किया। स्वामीजी पूछते हैं, 'आपकी आँख कैसी हैं?' मैंने कहा, 'डॉक्टर के अनुसार 2009 में रेटिना की जो स्थिति थी, उसमें कुछ और खराबी आयी है। उम्र के साथ पेशियों के कमजोर होने का रोग है और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इसका कोई इलाज नहीं है। वे तुरन्त कहते हैं, 'आप चक्षुषोनिषद् का पाठ करते हैं?' मैंने कहा, 'अभी तक आपका निर्देश नहीं मिला है।' तब उन्होंने कहा, 'प्रतिदिन बाल सूर्य को देखते हुए ग्यारह बार पाठ कीजिये। 15 से 20 मिनट समय लगेगा। साथ ही अमरोली से आँखों को धोइये।' मैंने पूछा, 'सेवन भी?' उत्तर मिला, 'नहीं।' लौट कर आता हूँ, फिर बात करेंगे, यह कह कर वे रिखिया के लिये चल दिये।

मैं आश्वस्त हुआ कि अब मेरी आँखों का समाधान निकल आयेगा। अगले दिन से उनके निदेशानुसार पाठ और अमरोली का प्रयोग आरम्भ कर दिया।

मैं बेरोजगार हो गया हूँ

22 अगस्त 2012 को प्रात: मैं पीछे गेट के पास बैठ कर नाश्ता कर रहा था कि अचानक स्वामीजी सीढ़ियों से आते दिखे। मुझे देख कर टिप्पणी करते हैं, 'भोग लगा रहे हैं?' मैंने कहा, 'जी हाँ।' और वे योगविद्या चले गये। मैंने जल्दी से नाश्ता समाप्त किया और उनके पास जा पहुँचा। वे जब थोड़ा खाली दिखे तो मैंने कहा, 'आजकल मैं बेरोजगार हो गया हूँ।' स्वामीजी का सुझाव था, 'मुखिया को कहिये।' मैंने स्पष्ट करते हुए कहा, 'मैं उस बेरोजगारी की बात नहीं कर रहा हूँ। मुझे बहुत अरसे से आपके चरण स्पर्श करने का काम नहीं मिला है और वही मेरी मुख्य मजदूरी है।' स्वामीजी सुनकर मुस्कुराये और खड़े हो गये। मैंने प्यार से अपनी मजदूरी की और फिर उनके साथ ही कुटीर तक आया।

आँखों की भाषा का चमत्कार

27 अगस्त से 1 सितम्बर तक पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया के वरिष्ठ अधिकारियों के लिये तनाव एवं स्वास्थ्य प्रबंधन सत्र के संचालन का दायित्व मुझे दिया गया था।

31 अगस्त 2012 की शाम पावर ग्रिड कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया के अधिकारियों और राष्ट्रीय स्वयं संघ के कार्यकर्त्ताओं के लिये स्वामीजी का सत्संग अखाड़ा में हुआ। सत्संग समाप्त हुआ तो इटली के स्वामी आनन्दानन्द ने कुछ विशिष्ट सामग्री स्वामीजी को भेंट की। सबके जाने के बाद मैंने वह सभी सामान शरणागत के बरामदे में रख दिया। हम बाहर आ गये तो स्वामीजी ने अन्दर प्रवेश किया और दरवाजे का एक पलड़ा बन्द कर चिटकनी लगा दी। तभी उन्होंने मेरी ओर देखा, मैं तो लगातार उन्हीं को देखे जा रहा था। हम दोनों की आँखें चार हुईं, तुरन्त ही मैंने अपनी दृष्टि उनके चरणों पर टिका दी। अगले क्षण स्वामीजी ने पल्ला खोला और बाहर आकर खड़े हो गये। उनके खड़े होते ही मैं दण्डवत् लेट गया और उनके चरणों को बाहों में भर लेना चाहा। तभी मैंने देखा कि वे अपने पैर पीछे की ओर ले जाने लगे हैं, मैंने उनके दोनों पैरों को दोनों हाथों से कस कर पकड़ लिया, उन्हें चुप-चाप खड़े हो जाना पड़ा। वे मुझे गुदगुदाने लगे। मैंने खूब आनन्द लूटा।

मैं उठा तो स्वामीजी अन्दर चले गये, मैं अखाड़ा से बाहर आ गया। मैं उस समय नशे जैसी हालत में रहा होऊँगा। वैसे यहाँ यह स्पष्ट कर दूँ कि मैंने नशा कभी नहीं किया है। नशे में लोगों को देखा है, उसी आधार पर लिख रहा हूँ। मेरे मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला था और न स्वामीजी ने ही कुछ कहा। हाँ, उन्होंने मेरे मन, मेरे हृदय की बात सुन ली और उसे पूरा करने में एक क्षण भी नहीं लगाया।

आज बहुत पुरानी फिल्म के गाने की दो पंक्तियाँ याद हो आयी हैं, उनका भाव यहाँ सटीक बैठ रहा है –

आँखों ही आँखों में इशारा हो गया ।
बैठे-बैठे जीने का सहारा हो गया ॥

मुझे सचमुच में जीने का सहारा मिल गया है। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मुझे यदि स्वामीजी के चरणों का सान्निध्य, और यह सान्निध्य केवल भाव में नहीं, बल्कि स्थूल रूप में न मिला होता तो मेरा क्या हुआ होता।

मेरा जीवन कितना अधूरा हो गया होता? सन्त कवि सूरदास के पद की भी दो पंक्तियाँ अचानक याद हो आयी हैं –



श्री बल्लभ नखचन्द्र छटा बिन,
सारो जग अँधियारो।
भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो ॥

मेरे जीवन धन, मेरे प्राणाधार, मेरे सर्वस्व, मेरे स्वामीजी के बारे में क्या कहूँ, क्या न कहूँ? "*अविगत की गति कहत न आवै।*" कैसे लिखूँ उनके बारे में वह सब, जो मेरे हृदय में है? जीवन की पूर्णता क्या हो सकती है या क्या होती होगी, मैं नहीं जानता, किन्तु मैं इतना समझ गया हूँ कि मैं पूर्णता का जीवन जिये जा रहा हूँ। मेरे जीवन में किसी वस्तु, किसी अनुभव का अभाव रह ही नहीं गया है। मुझे स्वामीजी ने अपने प्रेम और कृपा के प्याले पर प्याला पिला-पिला कर छका दिया है। मैं उनके प्रेम से अघा गया हूँ। उनकी कृपा से परितृप्त हो चुका हूँ।

प्राणिक उपचार

एक बार मैं भोपाल से गुजरते हुए, वर्मा जी के यहाँ दो दिन के लिये गया था। उन्होंने प्राणिक हीलिंग में अपने अनुभव के बारे में बताया। मेरे रहते हुए उन्होंने एक बीमार महिला का उपचार भी किया। इसी विषय पर चर्चा करते हुए वर्मा जी ने मुझ से कहा, 'आइये! आपके चक्रों की ऊर्जा नापते हैं।' बाद में वे अपनी हथेलियों से मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, विशुद्धि और आज्ञा चक्रों की सीध में चारों ओर कुछ देखते से दिखाई दिये। उनके अनुसार वे चक्रों से नि:सृत ऊर्जा का दबाव अपनी हथेलियों में अनुभव कर सकते हैं। अन्त में उन्होंने सहस्त्रार चक्र की ऊर्जा भी मापी।



बाद में वे गंभीर होकर खड़े हो गये तो मैंने उनसे पूछा, 'क्या कुछ गड़बड़ है?' इस पर वे बोले, 'आपके तो सभी चक्र जाग्रत हैं। चक्रों का इतना अच्छा ऊर्जा स्तर मैंने आज तक किसी का नहीं देखा है। आपका तो सहस्त्रार भी पूर्णत: जागृत है। आम लोगों के सहस्त्रार चक्र से हाथ की छोटी अँगुली के बराबर ऊर्जा की किरणें निकलती हैं, आपके सहस्त्रार से मैंने दो-तीन इंच के पाइप की तरह ऊर्जा निकलती देखी है। मैंने उनसे कहा, मैं चक्र जागरण की कोई भी, किसी तरह की साधना नहीं कर रहा हूँ। साथ ही यह भी कहना चाहूँगा कि मुझे ऐसा कभी लगा भी नहीं कि मेरा कोई चक्र जाग्रत है। सभी चक्रों के जागरण की बात तो कल्पना से भी परे है।' वर्मा जी ने कहा, 'मैंने जो देखा, वही बताया है।' मैंने कहा, यदि आपकी बात सच है तो मैं एक ही निष्कर्ष निकाल सकता हूँ कि यह चक्र जागरण मेरी गुरु सेवा का प्रसाद है। मुझ पर गुरु कृपा हुई है, यह उसी का प्रमाण है।'

वर्मा जी को यह सब करते देख मेरे मन में इच्छा जगी, 'काश! मैं भी ऐसा कर पाने में सक्षम होता?' वर्मा जी से मैंने कहा भी। इस पर उन्होंने कहा, 'आपको मैं सिखा सकता हूँ। और आपके तो सभी चक्र जाग्रत हैं, आप इस विद्या को बहुत कम समय में आसानी से सीख सकते हैं।' मैंने उनसे कहा, 'मैं स्वामीजी से पूछे बिना या उनकी आज्ञा के बिना यह विद्या नहीं सीखना चाहूँगा। उनकी आज्ञा मिलने पर मैं आपसे संपर्क करूँगा।'

बाद में मैंने उक्त घटना स्वामीजी को बतायी। चक्रों के जागरण की बात सुनकर स्वामीजी कहते हैं, 'आप बहुत भाग्यशाली हैं!' मैंने कहा, 'भाग्यशाली मैं हूँ ही। आपका शिष्य और भक्त होना मेरा सौभाग्य ही तो है। ऊपर से आपकी कृपा का पात्र भी हूँ।' कुछ समय बाद मैंने इस विद्या के सिखाये जाने के बारे में वर्मा जी के प्रस्ताव की चर्चा की तो स्वामीजी ने अनसुना कर दिया और खिड़की से बाहर का दृश्य देखने लगे। मैंने अनुमान लगाया कि स्वामीजी की मेरे लिये जो योजना बनी है, उसमें प्राणिक उपचार

संभवत: खप नहीं रहा है, इसीलिये स्वामीजी इसे अनसुना कर गए हैं। इसके साथ ही इस प्रस्ताव पर पूर्ण विराम लग गया।

स्वामीजी से मेरे रिश्ते!

इस विषय पर मैं जब तब चिन्तन करता रहता हूँ। एक बात सही है कि मैं स्वामी सत्यानन्द का शिष्य हूँ। उन्हें मैं अप्रत्यक्ष रूप से ढूँढ़ता रहा, जीवन के बयालीसवें वर्ष में उन्हें पा सका। जीवन धन्य हुआ।

स्वामीजी को मैंने गुरु नहीं बनाया है, वे मेरे गुरु बन गये हैं और उन्होंने मुझे अपना शिष्य बना लिया है। यह दीक्षा उनकी ओर से है। जो भी हो, मेरा पहला रिश्ता उनसे है कि मैं उनका शिष्य हूँ। यह रिश्ता अपरिवर्तनीय है। स्वामीजी से मेरा जो दूसरा रिश्ता बना, वह है सेवक का। मैंने सोच-समझ कर उनका सेवक बनना चाहा था, उन्होंने इस रूप में सहर्ष मुझे स्वीकारा, यह मेरे जीवन की बड़ी उपलब्धि है। शिष्य और सेवक की राह चलते-चलते स्वामीजी से निकटता बढ़ती गई, उनकी दिव्यता के दर्शन होते गए और एक नए रिश्ते ने जन्म ले लिया – मैं उनका भक्त बन गया, मैं उनका मुरीद हो गया। यह रिश्ता एक तरफा है। वे इसमें शामिल हों, आवश्यक नहीं है। हाँ, मैं उन्हें भगवान की जगह पर बैठा अनुभव करता हूँ। उनकी कृपा अनवरत बरस रही है। जीवन धन्य से धन्यतर होता जा रहा है। सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती जा रही है, दूरियाँ घट रही हैं, नजदीकियाँ बढ़ रही हैं। चौथा रिश्ता विशेष परिस्थितियों में स्वत:



प्रकट हुआ, जब मैं विकट रूप से भावनाओं में उलझा हुआ था। वह रिश्ता है – मैं उनका पुत्र हूँ, वे मेरे पिता हैं। उम्र का इस रिश्ते से कुछ लेना-देना नहीं है। बड़ी बात यह है कि स्वामीजी ने इस रिश्ते को स्वीकारा है।

पाँचवा रिश्ता प्रकट हुआ 22 मई 2009 को। यह मेरे जीवन का एक ऐतिहासिक दिन है। उस दिन स्वामीजी ने एक ऐसे रहस्य पर से पर्दा उठा दिया, जिसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है। उन्होंने कहा, "पिछले जन्म में आप मेरे 'सखा' थे।" सुनते ही मैं शान्त हो गया। अचानक मानो करोड़ों की लॉटरी खुल गई हो। पूर्णतः अप्रत्याशित थी यह घोषणा। ऊपर से मैं शान्त था, किन्तु हृदय बल्लियों उछल रहा था। हृदय ने मन्थन आरम्भ किया। यह कैसे संभव है? कहाँ स्वामीजी, इतने उच्च कोटि के सन्त और सिद्ध योगी और कहाँ मैं एक अति दीन, मूढ़, अर्ध विक्षिप्त, अति साधारण व्यक्ति। स्वामीजी तो पिछले जन्म में सिद्ध योगी रहे होंगे, तभी तो श्री स्वामीजी ने इनका आवाहन किया है। ऐसे सिद्ध योगी का सखा मैं कैसे बन पाया होऊँगा? अभी भी इस रिश्ते पर मैं विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि स्वामीजी इस रिश्ते को इस जन्म में भी निभाने पर तुले हैं। मेरे प्रति उनका व्यवहार सखावत् ही अधिक दिखता है। वे सदैव मेरे साथ खेलने का प्रयास करते दिखते हैं। मुझे भी बाध्य करते से लगते हैं कि मैं भी उन्हें इसी रूप में देखूँ।

आज की स्थिति पर चिन्तन करता हूँ तो मुझे ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि स्वामीजी मेरे साथ एक नये रिश्ते की सृष्टि करने की योजना बनाने में लगे हैं। यह छठा रिश्ता क्या होगा, केवल वे ही जान सकते हैं। मुझे तो प्रतीक्षा भर करनी है। मेरे जीवन में जो कुछ होना है, जो कुछ करना है, स्वामीजी को ही करना है। मेरी कोई योजना नहीं है, मेरी ओर से कोई पुरुषार्थ भी संभव नहीं है। मुझे इतना भरोसा है कि वे मुझे न केवल इस जन्म में, बल्कि आने वाले कई जन्मों में भी अकेला नहीं छोड़ेंगे। शायद अनन्त काल तक भी नहीं।

रिश्तों की गंभीरता क्या होती है या हो सकती है, अब कुछ समझ में आने लगा है। शब्द नहीं इन भावों को अभिव्यक्त करने के लिये। ऐसा लगता है, स्वामीजी ने एक पत्थर को हीरा बनाने का काम हाथ में ले लिया है। वैसे हीरा मिट्टी और पत्थर से ही उपजता है, जब तक कटाई-छँटाई और चमकाने का काम नहीं होता, वह मूल्यहीन ही रहता है।

सन्त तुलसीदास ने सभी रिश्तों को समाहित करते हुए एक बड़ा ही सुन्दर पद लिखा है –

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नाहिं, आरतिहर तोसो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर, हौं चेरो ।
तात-मात गुरु-सखा, तू सब बिधि मेरो ॥
तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै ।
ज्यों-त्यों 'तुलसी' कृपालु चरण-शरण पावै ॥

अन्त में भी मेरे मन की ही बात लिख दी है, 'तो हि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।' तुलसीदास जी ने इन रिश्तों के पीछे के भाव को भी बड़े ही सुन्दर ढंग से लिख दिया है, "ज्यों-त्यों 'तुलसी' कृपालु चरण शरण पावै।" इस जीवन की सारी उठा-पटक, सभी योग, सभी शास्त्रों का निचोड़ क्या यही नहीं है कि ज्यों-त्यों कृपालु चरण शरण पावै। यही जीवन का अन्तिम सत्य भी है। मेरे जीवन का ध्येय भी यही है।

योग प्रशिक्षण के दौरान कुछ विलक्षण अनुभव

1994 से 2008 तक स्वामीजी के आदेशानुसार पहले चार वर्ष अजमेर में रहकर और बाद के वर्षों में नोएडा में रह कर योग प्रशिक्षण के लिये नियमित रूप से देशभर में, जम्मू कश्मीर से केरल तक और पंजाब से बंगाल तक जाता रहा। उस कालावधि में कई बार मैंने गुरुदेव के सूक्ष्म सान्निध्य का अनुभव किया।

पहला प्रकरण

21 फरवरी से 1 मार्च 1999 तक ओ.एन.जी.सी.की मेहसाना परियोजना में एक योग शिविर का संचालन कर मैं 2 मार्च को प्रातः 5 बजे ओ.एन.जी.सी. की ही अंकलेश्वर परियोजना में पहुँचा। यह शिविर 10 मार्च तक चला।

शिविर के प्रतिभागियों से कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने के संबंध में से चर्चा हुई। पुरुषों एवं महिलाओं के लिये एक सत्र प्रातःकाल और



एक सान्ध्य काल में होना तय हुआ। उनके अतिथि भवन में मेरे रहने की व्यवस्था थी।

मैं अतिथि गृह के अपने कमरे में बैठा था, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। खोला तो देखा गेस्ट हाउस के केयरटेकर थे और उनके साथ एक प्रौढ़ उम्र की महिला थीं। उसने बताया कि यह महिला मुझसे मिलना चाहती है। हम दोनों वापस कमरे में आकर बैठ गये। कुछ मिनट हो गये, वह महिला चुपचाप बैठी रही। तब मैंने उनसे कहा, 'आप मुझसे बात करने आयी हैं, तो कुछ कहिये। क्या बात है?' फिर कुछ मिनट का मौन। मैंने फिर उन्हें सचेत किया और कहा, 'आप कुछ बोलेंगी नहीं तो मैं क्या कर सकूँगा? कुछ बोलिये तो!' फिर मैंने ही कहा, 'आप प्रात: की बैठक में तो आयीं नहीं थीं और मुझसे परिचित नहीं होने पर भी आप मुझसे मिलने कैसे आ गयीं?' इस पर वे बोलीं, 'हाँ, मैं नहीं आई थी। किन्तु मेरे पड़ोसी और सहयोगी प्रात: बैठक में आये थे। उन्होंने मेरे घर आकर सलाह दी है कि मैं आप से मिल लूँ।'

उन्होंने मेरे पूछने पर बताया कि मेरा नाम डॉ.अनीता गुप्ता है, मैं केमिस्ट के पद पर ओ.एन.जी.सी. में ही कार्यरत हूँ। फिर चुप्पी। मेरे बहुत आग्रह पर अनीता जी बोलीं, 'मेरे दो बच्चे हैं। छोटा बेटा 12 वर्ष का है और मैं साढ़े बारह वर्ष से अलग रह रही हूँ।' और फिर चुप्पी। मैंने अनुमान लगाया कि पति से अनबन चल रही है, पटरी नहीं बैठ रही है। प्रकट रूप में मैंने कहा, 'साढ़े बारह बरस का तो काफी लम्बा समय होता है। इतने वर्षों तक अलग रहते हुए अब तक तो परिस्थितियों से समझौता हो जाना चाहिये था। आज आपके चेहरे पर इतने गहन तनाव के लक्षण क्यों दिखाई दे रहे हैं?' इस पर

वे कहतीं हैं, 'परसों मुझे पेशे से वकील, अपने पति की ओर से तलाक के पेपर्स प्राप्त हुए हैं, जिसमें आपसी सहमति से तलाक लेने का सुझाव दिया है।' यह बोल कर वे फिर चुप हो गयीं।

मैंने सोचा, इतना लम्बा समय बीत जाने के बाद भी अनीता जी के मन में कहीं क्षीण आशा बची हुई थी कि शायद आपसी रिश्ते सुधर जायेंगे। किन्तु परसों प्राप्त तलाक के कागजातों ने हृदय की आग को, जो समय की राख में दब चुकी थी, फिर हवा देकर उभार दिया है। उनके चेहरे पर झलक रहा भयंकर तनाव उसी का परिणाम है। इन्हें इस शिविर में भाग लेने से निश्चित रूप से लाभ होगा। ऐसा सोचकर मैंने सलाह दी, 'यह एक सुखद संयोग है कि आज से योग शिविर शुरू हो रहा है और आज ही आप मुझसे मिलने आ गयी हैं। आप इसके दोनों सत्रों में नियमित रूप से भाग लीजिये। सब ठीक हो जायेगा।' इस पर वे बोलीं, 'मैं नौकरी करती हूँ, मैं नहीं आ सकती।' यह सुनकर पता नहीं कैसे मेरे मुँह से निकल पड़ा, 'आपको इस शिविर में भाग लेना ही होगा। अन्यथा आप अपने जीवन को बर्बाद करने जा रही हैं।' मैंने आगे कहा, 'प्रात: के सत्र में भाग लेने के लिये आप प्रतिदिन आधे दिन की आकस्मिक छुट्टी लीजिये और शाम का सत्र तो ऑफिस के समय के बाद है। यदि आपको छुट्टी मिलने में मुश्किल हो तो मैं आपके समूह जनरल मैनेजर से बात करूँगा। आपके लिये इस योग शिविर में भाग लेना अति आवश्यक है।' इतना सुनकर वे शिविर में भाग लेने को तैयार हो गयीं।

डॉ. अनीता अपनी ओर से नियमित रूप से प्रत्येक सत्र के पहले गेस्ट हाऊस आतीं, मुझे गाड़ी में बैठाकर सत्र-स्थल ले जातीं और फिर वापस छोड़ जातीं। यह कार्यक्रम उनकी ओर से निर्बाध रूप से चलता रहा। इस बीच न तो अनीता जी ने एक भी शब्द कहा और न ही मैंने कुछ पूछा। हम एक मूक फिल्म के पात्रों की तरह व्यवहार करते रहे। किन्तु मैं सत्र के दौरान भी और गाड़ी में उनके चेहरे के भावों यदा-कदा पढ़ता रहता था। मुझे लगा उनका तनाव लगातार घटता जा रहा है। आठवें दिन षट्कर्म – नेति, कुंजल और लघु शंखप्रक्षालन के अभ्यास कराये गये। गेस्ट हाऊस आने पर मैंने पहली बार उनसे पूछा, 'आपको कैसा लग रहा है?' उनका उत्तर स्पष्ट, बेबाक और आत्मविश्वास से भरा था। मुझे उनसे ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने कहा, 'मेरे मानसिक तनाव में पहले दिन से गिरावट आनी शुरू हो गयी थी, इसी कारण मैंने आपसे अपनी समस्या को लेकर एक भी दिन बात नहीं की।

आज मैं अनुभव कर रही हूँ कि मेरा खोया हुआ आत्म-विश्वास पूरी तरह वापस आ गया है। मुझे विश्वास हो चला है कि मैं अपनी समस्याओं से स्वयं निपट सकती हूँ।' कुछ क्षण रुक कर वे कहती हैं, 'पहले दिन जब मैं आपसे मिलने आयी थी, तब मैं वास्तव में भयंकर तनाव के कारण बेहोशी की-सी स्थिति में थी। ऐसा अब अनुभव कर सकती हूँ। मैंने आपसे क्या कहा, मुझे टुकड़ों में कुछ-कुछ याद है, बस।'

मैंने कुछ क्षणों के लिये आँखें बन्द कीं, मन-ही-मन स्वामीजी को प्रणाम किया और उन्हें धन्यवाद दिया कि ऐसी गंभीर स्थिति में पहुँच चुकी इस महिला को आशा से कहीं अधिक लाभ मिला है।

दूसरा प्रकरण

इसी योग शिविर के दौरान एक और प्रौढ़ महिला से सामना हुआ, जिन्हें नींद न आने की शिकायत थी। ओ.एन.जी.सी.में जनरल मैनेजर के पद पर कार्यरत उनके पति ने बताया, 'चार-पाँच वर्ष पूर्व इन्हें नींद में व्यवधान की शिकायत शुरू हुई। अहमदाबाद में और बाद में मुम्बई में इस समस्या से जुड़े जितने विशेषज्ञ थे, सभी को दिखाया। कोई भी डॉक्टर इन्हें बिना नींद की गोली खिलाये सुला नहीं सका। नींद की गोली के दुष्प्रभाव के बारे में मैंने बहुत पढ़ा है, इसलिये इन्हें एक वर्ष पहले अस्पताल से छुड़ा कर यहाँ ले आया हूँ। और इस बीच ये बिल्कुल भी नहीं सोई हैं।'

उनकी कहानी सुनकर मैं स्तब्ध रह गया। मन में विचार किया कि नींद बिल्कुल नहीं आना तो पागलपन का स्पष्ट लक्षण है। ये अभी तक पागल नहीं हुई हैं, आश्चर्य है। फिर सोचा, इनको क्या कहूँ? कोई रास्ता न मिलता देख, मैंने आँखें बन्द कीं, गुरु जी से प्रार्थना की कि मैं किसी भी परिस्थिति में बिहार योग पद्धति को असफल होते नहीं देख सकता हूँ। आपको कुछ करना ही होगा। मुझे कुछ आन्तरिक आश्वासन मिला।

मैंने आँखें खोलीं और उनसे कहा, 'आज रात को सोने की तैयारी के रूप में आप पाँच-पाँच मिनट श्वास की सजगता, भ्रामरी प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम और ॐ उच्चारण का अभ्यास करें। इसके तुरन्त बाद योग निद्रा का अभ्यास करें। और कल प्रात: मुझे बतायें कि क्या परिणाम मिला।

अगली प्रात: मैंने माता जी से पूछा, 'क्या खबर लायीं हैं?' उनका उत्तर सुन कर मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने कहा, 'स्वामीजी!



मैं कल रात सो गई। और पूरे छः घंटे सोई।' प्रकट में मैंने कहा, 'बधाई हो! आप इसी कार्यक्रम को प्रतिदिन जारी रखिये।' अगले क्षण मैंने आँखें बन्द कर स्वामीजी को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया कि पूरी तरह निराशाजनक स्थिति में इतना अधिक सुधार और पहले प्रयोग में ही। यह सब आपकी कृपा है, केवल कृपा। मैं जब तक वहाँ रहा, प्रतिदिन उन माताजी से पूछता रहा, और वे प्रतिदिन बताती रहीं कि मैं छः घण्टे सो रही हूँ।

मुझे लगता है, मुझे अंकलेश्वर में उन दो माता जी के लिये ही भेजा गया था। उनकी आन्तरिक करुण पुकार भगवान सदृश मेरे गुरु जी ने सुनी होगी और अपनी कृपा मेरे माध्यम से उन तक पहुँचाने के लिये मुझे भेज दिया। मैं बहुत आनन्दित हूँ कि वे दोनों आज बिल्कुल ठीक हैं।

तीसरा प्रकरण

अब इलाहाबाद के चिकित्सा महाविद्यालय के फेफड़े और वक्ष रोग सम्बन्धी विभाग में रीडर के पद पर कार्यरत और इस रोग के विशेषज्ञ के रूप में विख्यात डॉ. अग्रवाल के बारे में लिखता हूँ। उनकी कहानी में विरोधाभास यह था कि वे स्वयं पिछले बीस वर्षों से दमा के रोगी थे और स्थिति दिन-पर-दिन गंभीर होती जा रही थी। मुझे विशेष अनुरोध पर वहाँ ले जाया गया। उनकी पूरी कहानी सुनी। वे दयनीय जीवन जीने पर मजबूर हो चुके थे। उस समय पिछले तीन दिन से छुट्टी पर थे।

मैंने उन्हें कुंजल कराने का निर्णय लिया। वे और कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने तीन गिलास नमकीन, गुनगुना पानी पिया। चौथा

गिलास उनके हाथ में था। वे अचानक वाश बेसिन की ओर दौड़े, जबकि चलना भी उनके लिये मुश्किल था। मैं भी उन्हें आश्वस्त करने के लिये पीछे-पीछे दौड़ा। वहाँ पहुँचते ही एक फव्वारे की तरह उनके मुँह से पानी निकलने लगा और कुछ ही क्षणों में लगभग सारा पानी बाहर आ गया। हाथ-मुँह धुलाकर, उन्हें सहारा देकर वापस लाया और शवासन में विश्राम करने को कहा। मैं उनकी श्वास की क्रिया को देख रहा था। पाँच मिनट में वे कुछ-कुछ उदर श्वसन सा करते दिखे। मैंने उन्हें बैठने को कहा तो वे लम्बी-लम्बी श्वास लेते-छोड़ते दिखे। मैंने कहा, 'यह क्या कर रहे हैं?' उनका उत्तर था, 'मैं संभवत: 15 वर्ष पूर्व इस तरह श्वास लिया करता था। स्वामीजी! आपने तो मुझे 15 वर्ष पहले की स्थिति में एक झटके में पहुँचा दिया है। मैं बिल्कुल स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ।' और बाद में वे अपनी कार चलाते हुए मेरे भतीजे के घर, जो तीन किलोमीटर दूर था, पहुँचाने गये। मेरा भतीजा भी, जो मनोरोग विशेषज्ञ है, उन्हें कार चलाते देख कर हैरान हुआ था। उसे भी डॉ. अग्रवाल ने यही कहा, 'यह सब स्वामीजी का करिश्मा है।'

मैंने तब भी गुरु जी को मन-ही-मन प्रणाम कर धन्यवाद दिया था। ऐसी विकट स्थिति में पहुँचे उसी रोग के एक विशेषज्ञ डॉक्टर को एक ही दिन में इतना लाभ जो मिला था।

मैं जहाँ कहीं गया, मुझे लगा स्वामीजी मेरे साथ ही रहे और जहाँ कहीं कुछ समस्या आयी, एक नया समाधान सदैव मिल गया। स्वामीजी हर कहीं मेरे साथ बने ही रहे और आज भी बने हुए हैं।

स्वामीजी की कृपा का बाहुल्य क्यों?

स्वामीजी की कृपा और प्रेम की वर्षा के अनेक प्रकरण हैं, जब मैं भरपूर रोया हूँ। इन प्रकरणों पर चिन्तन करता हूँ तो मुझे लगता है कि कभी-कभी भावनाओं में बहुत उभार आ जाता है तब अनायास आँसू झरने लगते हैं। और भावनाओं में उभार का कारण अक्सर एक ही रहा है कि मैं तो किसी लायक हूँ नहीं, फिर भी स्वामीजी मुझ पर इतना प्यार और कृपा क्यों लुटाते रहते हैं। कुछ देर तक आँसू बहा लेता हूँ, तो भावनाओं का ज्वार कुछ शान्त होने लगता है और फिर चिन्तन आरम्भ हो जाता है। सोचता रहता हूँ। किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाता हूँ। और फिर भावनायें उभरने लगती हैं, आँसू झरने लगते हैं। कभी-कभी तो घण्टों इसी मन:स्थिति में रहा हूँ।

अन्त में अपने को समझाता हूँ कि यह सब परमात्मा की ही कृपा का रूप है। शास्त्रों में ऐसा लिखा है, गुरुजन बताते हैं कि परमात्मा अपनी कृपा सन्त-महात्माओं के माध्यम से ही हम तक पहुँचाता है।

एक दिन 'नारद भक्ति सूत्र' पर शक्तिपात परम्परा के उच्च कोटि के सन्त स्वामी विष्णु तीर्थ जी के शिष्य स्वामी शिवोमतीर्थ की लिखी 'परम प्रेमालोक' नाम की पुस्तक मेरे हाथ लग गयी।

'परम प्रेमालोक' के पन्ने पलटे, कुछ-कुछ पढ़ा भी। पढ़ने के क्रम में मैं कुछ सूत्रों में अटक कर रह गया। उनका अर्थ, उनकी व्याख्या पढ़ी। यह क्या मेरे सारे अनसुलझे प्रश्नों के उत्तर प्रमाणिक रूप से मिलते दिखे। शास्त्रों के अध्ययन में मेरी रुचि कभी नहीं रही है, फिर भी 'परम प्रेमालोक' मैं पढ़ गया, क्योंकि यह हृदय की, भावनाओं की व्याख्या करता दिखा। कुछ सूत्रों ने तो मेरे हृदय और बुद्धि, दोनों को तुष्ट किया। मैं प्रसन्न हूँ कि मुझे एक नई दृष्टि मिल गयी है। अब उन सूत्रों के बारे में लिखता हूँ, जिनसे मैं विशेषकर अनुप्राणित हुआ हूँ।

ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वाद दैन्या प्रियत्वाञ्च (सूत्र 27)

ईश्वर को भी अभिमान से द्वेष भाव है तथा दीन भाव प्रिय है।

मेरा अल्प बुद्धि होना, जब-तब आँसू बहाते रहना, ये मेरी असहायावस्था और दीनता के ही तो लक्षण हैं। और इस सूत्र में नारद जी कहते हैं कि दीनता ईश्वर को प्रिय है। मेरे सारे 'क्यों' के उत्तर इस सूत्र में मिल गये हैं कि स्वामीजी ऐसा क्यों करते हैं। हाँ, नारद जी ने यह नहीं लिखा कि ईश्वर को दीनता क्यों प्रिय है। उन्होंने इतना भर कहा है कि यह ईश्वर का स्वभाव है। उसकी आदत है दीनों को प्रेम करना। मेरे स्वामीजी भी लगता है, मुझे दीन जान कर ही प्यार करते हैं। इन विचारों से मुझे बहुत राहत मिली है।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत् कृपालेशाद्वा (सूत्र 38)

(परम प्रेमारूप भक्ति) मुख्यतया महापुरुषों की कृपा से अथवा भगवत् कृपा के लेश मात्र से (प्राप्त होती है)।

सन्तों की कृपा वास्तव में प्रभु कृपा ही होती है, जो सन्तों के माध्यम से प्रकट होती है। सन्त जिस पर भी कृपावन्त हो जाते हैं, उसे ईश्वरीय सत्ता का अनुभव करा देने की क्षमता रखते हैं।

मुझे इन सूत्रों के माध्यम से विश्वास हो चला है कि नारद जी साक्षी हैं कि मैं जो गुरु कृपा में आकण्ठ डूबा हुआ हूँ, इसका एक ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मैं अपनी मंजिल के बहुत पास पहुँच गया हूँ।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽमोघश्च (सूत्र 39)

परन्तु महापुरुषों का (सन्तों का) संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है।

सन्त का संग दुर्लभ है, इसका अर्थ हुआ कि पूर्वजन्म के कर्मफल या प्रारब्ध के फलस्वरूप ही सन्तों का दर्शन प्राप्त होता है, और घनीभूत प्रारब्ध के फलस्वरूप ही सन्तों का संग मिलता है। इस कथन से मुझे और अधिक राहत एवं सान्त्वना मिली है।

इस सूत्र में आगे कहा गया है कि सन्त कृपा अगम्य है। अर्थात् उनकी कृपा की थाह पाना हमारे बस की बात नहीं है। जब नारद जी जैसे उच्च कोटि के भक्त कहते हैं कि सन्त कृपा अगम्य है तो भला मुझ जैसा मूढ़, दीन-हीन व्यक्ति स्वामीजी के दिखायी पड़ने वाले कृत्यों पर प्रश्न चिह्न लगाये तो उसे क्या कहेंगे? स्वामीजी अगम्य हैं; यह आज तक मैं क्यों नहीं समझ पाया? नारद जी की अहैतुकी कृपा से अब समझा है कि अब भविष्य में स्वामीजी के किसी भी कृत्य पर प्रश्न खड़े नहीं करूँगा।

इस सूत्र में आगे कहा है कि सन्त कृपा अमोघ है। इसका अर्थ हुआ कि सन्त कृपा सुफलदायी न हो, ऐसा नहीं हो सकता। नारद जी कितना बड़ा भरोसा दिला रहे हैं हम जैसों को! सन्त के चरणों में पड़े रहो, तुम्हारा कल्याण होकर रहेगा। बस, सन्तों में अपनी आस्था, श्रद्धा और विश्वास बनाए रखो। अटूट आस्था!

कण्ठावरोध रोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथ्वीं च

(सूत्र 68)

कण्ठावरोध, रोमांच तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से परस्पर सम्भाषण करते हुए, अपने कुलों तथा पृथ्वी को पवित्र करते हैं।

मुझे ऐसा लगने लगा है कि नारद जी ने ये कुछ सूत्र संभवतः मेरे लिये ही लिखे हैं। मैं जब-तब रोने लग जाने को अभी तक अपने व्यक्तित्व की एक कमी मानता रहा हूँ। आज पता चला कि यह तो मुझमें बहुत बड़ा दैवी गुण है। कण्ठावरोध, रोमांच और अश्रुपात, ये तीनों तो मेरे अन्तरंग सखा हैं, साथी हैं। मैं इस अर्थ में भी कितना भाग्यशाली हूँ! नारद जी ने यह सूत्र



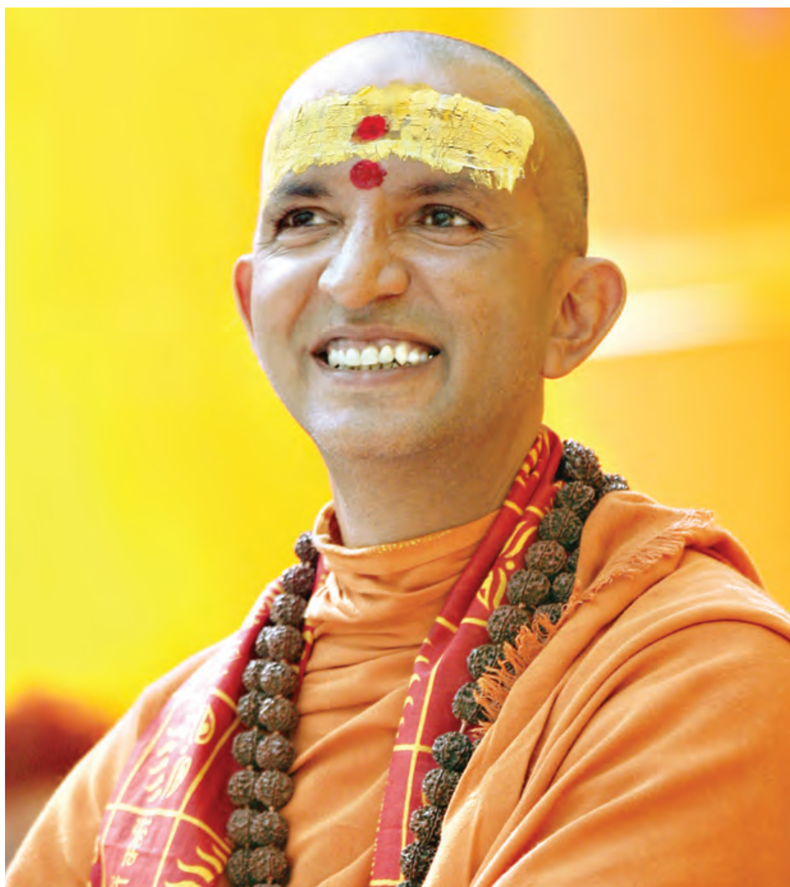
लिख कर सचमुच मुझ पर कितना उपकार किया है, और इन्हें पढ़ने और समझने का अवसर प्रदान कर मुझे धन्य कर दिया है। आँसू बहें तो बहें, रोमांच और कण्ठावरोध हो तो हो, अब दु:खी नहीं होना है, बल्कि प्रसन्न होना है, आनन्द मनाना है, यह भी मुझ पर दैवी कृपा है।

ऐसा प्रतीत होता है मेरे समस्त प्रश्नों, आशंकाओं के उत्तर मुझे मिल गये हैं। एक ही भाव उभर रहा है कि मेरे जीवन में अब केवल वही हो जो मेरे प्राणेश्वर स्वामीजी चाहें। समस्त चिन्ताओं का आधार मिटता दिख रहा हैं। स्वामीजी का वरदहस्त मुझ पर है, मेरी निजता उनके हृदय में सुरक्षित है, मेरे हृदय को उनकी चरण-रज का आधार प्राप्त है, और मेरी बुद्धि पर पहले से ही उनका आधिपत्य है। इतना सब होने के बाद, प्रत्यक्षत: ईश्वर दर्शन की चाह भी शेष नहीं रह गयी है। मुझे अपने स्वामीजी के चरणों में क्या नहीं मिल रहा है? मैं जिस आनन्द के सागर में हिलोरें ले रहा हूँ, उसके आगे आनन्द की कोई और सीमा भी हो सकती है; मेरी कल्पना से परे है। मेरा जीवन पूर्णता की हद तक पहुँच गया लगता है। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस स्वामीजी ही मुझ पर छाये रहते हैं। इसे मेरा दीवानापन या पागलपन कुछ भी कह सकते हैं। गोपियों का कृष्ण से या मीराबाई का कृष्ण से प्रेम कैसा रहा होगा, इसे मैं अब महसूस कर सकता हूँ। ऐसे ही किसी भक्त ने लिखा होगा –

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

यही भाव इन पंक्तियों में भी झलकता दिख रहा है –

अब तो तू है, बस तू ही तू है।
दिल मगर अपना दिखाऊँ कैसे?



मैं क्या करूँ? मेरी दशा भी कुछ ऐसी ही बन गयी लगती है कि 'बस, तू है और तू ही तू है।' अब और कुछ नजर ही नहीं आता है।

श्री कृष्ण ने गोपियों को समझाने के लिये उद्धव जी को भेजा था कि वे कृष्ण के वियोग में इतना क्यों रोती रहती हैं। गोपियों ने उद्धव से क्या कहा?

अननि के प्यारे, तन-ताप के हरनि हारे, नन्द के दुलारे बृजवारे उमहत हैं ।
कहें 'पदुमाकर' उरूझे उर अन्तर यों, अन्तर चहूँ हूँ तैं न अन्तर चहत हैं ।
नैननि बसे हैं, अंग-अंग हुलसे हैं, रोम रोमनि लसे हैं, निकसे हैं को कहत हैं ?
ऊधो! वे गोविन्द मथुरा में कोई और इहाँ, मेरे तो गोविंद मोहि, मोहि में बसत हैं ।

गोपियों ने अपने हृदय की बात कितने निराले ढंग से कह डाली है। साथ ही प्रेम की कितनी दार्शनिक व्याख्या भी कर डाली है! और उद्धव को कितना स्पष्ट संदेश दिया है। यह प्रसंग कितना मार्मिक बन गया है। उद्धव जी, जो ज्ञानावतार हैं, गोपियों के आगे कितने बेबस नजर आते है। प्रेम कहें या भक्ति कहें, ज्ञान उसके आगे समर्पण करता सा दिखायी देता है। उद्धव निरुत्तर हो जाते हैं। इन प्रसंगों या ऐसे ही अन्य प्रसंगों के बारे में सुनकर, पढ़कर हृदय पुलकित हो उठता है, शरीर रोमांचित हो उठता है, आँसू अनायास झरने लगते हैं।

स्वामीजी! आपको ऐसा नहीं लगता कि आप भी मेरे हृदय में तिरछे होकर अटक गये हैं या फँस गये हैं। इसका परिणाम हुआ है कि तिरछे होकर फँसे होने के कारण मैं तो आपको अपने हृदय से निकाल ही नहीं सकता हूँ और उधर आप भी, चाह कर भी, पूरे प्रयत्नों के बावजूद अपने को मेरे हृदय से निकाल पाने में असमर्थ हैं। मैं जानता हूँ कि आप सिद्ध सन्त हैं, महान् योगी हैं, किन्तु प्रेम में यह सब हिसाब नहीं होता। इसे यों भी कह सकता हूँ कि आप भी तो वास्तव में मेरे हृदय से निकलना कहाँ चाहते हैं। आपको लीला जो करनी है।

सन्त कबीर ज्ञानियों में अग्रगण्य माने जाते हैं। उन्होंने जीवनभर ज्ञानोपदेश ही दिये हैं, ज्ञान की ही व्याख्या की है। किन्तु जरा इन पंक्तियों पर दृष्टि डालिये, वे क्या कह रहे हैं?

जो बिछुड़े हैं पियारे से, भटकते दर-बदर फिरते ।
हमारा यार है हममें, तो हम को इन्तजारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हमसे, हम न बिछुड़े पियारे से ।
उन्हीं से नेह लागा है, हमन को बेकरारी क्या ?

यह प्रेम या भक्ति की ही तो व्याख्या कर रहे हैं कबीरदास। कितनी हृदयग्राही हैं ये पंक्तियाँ! कितना उच्च भाव है! यही प्रेम का चर्मोत्कर्ष है कि *'न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से।'* काश! मेरे जीवन में ऐसा ही कुछ घटित हो जाए? प्रेम में पहले समर्पण और फिर अभिन्नता का भाव उभरता है। यह अभिन्नता ही प्रेम की पराकाष्ठा है। *जब दोनों मिल एक बरन भये।*

यही भाव इन पंक्तियों में भी दिखायी देता है –

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे ।
बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरजू रहे ॥

इन पंक्तियों में सूरदास जी अपने हृदय की बात कितने सरल, किन्तु सारगर्भित ढंग से कहते लग रहे हैं –

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ?
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, पुनि जहाज पै आवै।

जहाज का पंछी चाह कर भी अन्यत्र आश्रय पाने में असमर्थ है। मेरी दशा तो उस पंछी से भी गयी गुजरी लगती है। मुझे तो दृष्टि दोष भी है। पंखों से उड़ना भी चाहूँ तो जाऊँ कहाँ? मुझे तो अपने प्राणाधार के अतिरिक्त कुछ दिखता ही नहीं है।

स्वामीजी! आप जब तक चाहें, मुझसे खेलते रहें, खेल रचाते रहें, प्रसन्न होते रहें; मैं सहर्ष आपकी लीला का माध्यम बने रहने को तत्पर हूँ। मेरे लिये जीवन की यही सबसे बड़ी उपलब्धि है। इसके आगे मेरी कोई 'आरजू' नहीं है, कोई कामना नहीं है। मेरे जीवन में जो हो, वह आपकी मर्जी से ही हो।

मेरी सेवा, संन्यास और वैराग्य

मेरे अन्तर में अखण्ड ज्ञान से ओत-प्रोत एक मार्गदर्शक गुरु पाने की इच्छा इतनी बलवती हो उठी थी कि स्वयं भगवान को मेरे सम्मुख प्रकट होना पड़ा। स्वप्न में ही सही, भगवान आये और मेरे उलाहने, मेरी पीड़ा की व्यथा-कथा और प्रार्थना को उन्हें सुनना पड़ा। इतना ही नहीं, मेरे घोर रुदन से द्रवित हो, उन्होंने उसी क्षण उस व्यवस्था का सूत्रपात कर डाला, जिसकी अन्तिम परिणति हुई श्री स्वामीजी के दिव्य दर्शन प्राप्त करने में। प्रथम दर्शन में ही उन्हें गुरु रूप में वरण करने की इच्छा जाग्रत हुई और अन्त में उनसे दीक्षित हो उनका शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त हो गया। मुझे तो मानो नई आँखें ही मिल गयीं। न जाने मैं कब से प्यासा चला आ रहा था, मेरी प्यास बुझी और मेरा जीवन एक अलग दिशा में चल निकला।

1978 से 1994 के आरम्भ तक का समय मेरी आन्तरिक यात्रा की तैयारी की भूमिका बनाने में बीता। मैं जनवरी 1994 में धनबाद से, जहाँ मैं भारत सरकार के खान सुरक्षा महानिदेशालय में कार्यरत था, गंगा दर्शन आया था। स्वामीजी मुझसे मिले तो मैंने उन्हें अपना यह संकल्प सुना दिया, 'मैं पहली अप्रैल से सरकारी सेवा से मुक्त हो रहा हूँ और आगे का समय मैंने आपकी सेवा में बिताने का निर्णय लिया है। आप मेरे लिये कोई काम ढूँढ़ कर रखिये। मुझे कब और कहाँ पहुँचना है, बता दीजिये। मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा।' स्वामीजी



ने मेरी बातों को गंभीरता से सुना और कहा, 'आप चैत्र नवरात्रि में गंगा दर्शन आ जाइये। साथ में परिवार यानी माता जी को भी लाइये।' मैंने हामी भरी और धनबाद के लिये चल दिया।

अब सोचता हूँ तो आश्चर्य होता है कि मैंने यह संकल्प क्यों और कैसे ले लिया। इतना ही नहीं, मेरी पत्नी, विमलेश ने भी इतनी सहजता से मेरे संकल्प का अनुमोदन कैसे कर दिया! मुझे लगता है कि यह सब मेरे स्वामीजी की योजना का ही अंग था। उन्होंने ही मेरा और विमलेश का 'ब्रेन वाश' किया होगा, जिसकी परिणति हुई चैत्र नवरात्रि अष्टमी, अर्थात् 18 अप्रैल 1994 को कर्म संन्यास में मेरी दीक्षा और सेवा व्रत लेने में। शिष्यत्व का मूल उद्देश्य है, नयी दृष्टि प्राप्त करना, अपने गुरु की आँखों से देखने को प्रवृत्त होना और सेवा-व्रत का उद्देश्य है, अपने कर्मों का क्षय। वैसे परोक्ष रूप से मैं स्वामीजी का सान्निध्य और सामीप्य पाने के लिये ही सेवा के क्षेत्र में उतरा था। लेकिन हुआ क्या?

स्वामीजी ने मुझे शारीरिक स्तर पर अपने से दूर रखा और मुझे परिवार के साथ ही रह कर योग प्रशिक्षण रूपी सेवा करने का आदेश दिया। एक बार उनके श्रीमुख से सीधे-सीधे ये शब्द निकले थे, 'अभी आपको माता जी से अलग नहीं रहना है।' मैंने अनुभव किया कि यद्यपि मैं स्वामीजी के सान्निध्य में आश्रम में नहीं रहा, किन्तु उनसे दूर भी नहीं रहा। वर्ष में पाँच-छ: बार रिखिया या मुंगेर आता ही रहता था और पाँच-छ: बार देश में आयोजित योग सम्मेलनों में, जिनमें स्वामीजी उपस्थित रहते थे, पहुँच ही जाता था। इस प्रकार मैं परोक्ष

रूप से उनके निकट बना ही रहा। स्वामीजी भी मेरी गतिविधियों पर बराबर अपनी दृष्टि बनाये रखते थे। एक बार उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, 'आप अपनी रिपोर्ट इस प्रकार बना कर भेजें कि आवश्यकता पड़ने पर मुझे यह पता चल सके कि किसी तिथि विशेष को आप कहाँ हैं।' उन्होंने यह भी आदेश दिया था कि मुझे मोबाइल फोन भी ले लेना चाहिये।

यद्यपि मैं रह घर पर रहा था, किन्तु योग शिविरों के संचालन के लिये भारत भर में, केरल से जम्मू कश्मीर और पंजाब से बंगाल तक नियमित रूप से जाता रहता था। वर्ष 2001 में मैंने हिसाब लगाया तो पाया कि वर्ष के 365 दिनों में से 285 दिनों तक मैं घर से बाहर रहा था। स्वामीजी की प्रेरणा और सम्प्रेषित शक्ति ही मेरे द्वारा संपादित सभी कार्यों के लिये उत्तरदायी है। उनकी अनवरत प्रेरणा और सतत् आशीर्वाद मुझे सदैव मिलता रहा है, मिल रहा है और भविष्य में भी मिलता रहेगा।

2003 में एक बार रिखिया में स्वामीजी के श्री मुख से ये शब्द सुने तो मैं कुछ क्षणों तक स्तब्ध रह गया था। उन्होंने कहा था, 'अब जहाँ कहीं कार्यक्रमों के लिये मुझे जाना होगा, मैं आपको भेजा करूँगा।' यह वक्तव्य यह दर्शाता है कि उन्हें मुझ पर कितना भरोसा है। 7 अप्रैल 1996 को उन्होंने मुझे सन्निकट मृत्यु के पाश से मुक्त कराया था और 2006 में यह कह कर कि 'आपको ऐसे एक्सटेंशन मिलते जायेंगे', लगता है मुझे चिरंजीवी ही बना दिया। इन सब घटनाओं का परिणाम हुआ कि मैं उनकी दिव्यता और सर्वशक्तिमत्ता से अभिभूत होता चला गया। इस सन्दर्भ में कुछ घटनाओं को उद्धृत कर रहा हूँ।

- 2007 में एकाएक कुण्डलिनी जागरण का अनुभव और सेवा में बाधा पहुँचने के कारण मेरे अनुरोध पर उसे पूर्णत: शान्त कर देना।
- 28 अप्रैल 2008 को एम्स, नई दिल्ली के ऑपरेशन थियेटर में मेरी दायीं आँख की शल्य क्रिया होने के अवसर पर प्रकट रूप से दिव्य दर्शन देना।
- 2012 में बरौनी में योग शिविर के दौरान गहन ध्यान का अनुभव करा देना और बाद में इसकी अपने तरीके से पुष्टि भी करना।

इन सब कृत्यों और मुझे निमित्त बना कर की गयीं एवं सतत् की जा रही। लीलाओं के कारण मैं उनकी दिव्यता की छाया में आता चला गया। मुझे उनमें स्पष्ट रूप से ईश्वरत्व के दर्शन होने लगे हैं। वे मेरे लिये ईश्वर तुल्य हो गये हैं।

इस सब का परिणाम हुआ कि मैं शिष्य और सेवक की भूमिका से बाहर आकर उनका भक्त बन गया। कर्म संन्यास में दीक्षित होना सहज रूप से मेरे

जीवन का पाथेय बन गया और इसने मुझे इन तीनों ही भूमिकाओं में गहनता प्रदान की है।

14 वर्षों तक घर पर रहकर सेवा व्रत का पालन कर लेने के बाद, स्वामीजी ने मार्च 2008 में मुझे मुख्यत: योग शिक्षक प्रशिक्षण सत्रों और स्वास्थ्य रक्षा सत्रों के संचालन के लिये गंगा दर्शन बुला लिया। वैसे मैंने अनुभव किया है कि इन सत्रों के संचालन का दायित्व मेरे लिये मुख्य नहीं है। मुझे गंगादर्शन बुलाने का स्वामीजी का मुख्य उद्देश्य रहा है, अपना सान्निध्य और सामीप्य प्रदान करना और मुझे माध्यम बना कर अपनी लीलाओं को प्रकट करना। इस रूप में वे अपनी असीम कृपा और सहज प्रेम का पात्र बना कर मुझे कृतकृत्य कर रहे हैं।

मैं जब अपने संन्यस्त जीवन और वैराग्य में प्रवेश के बारे में सोचता हूँ तो एक तथ्य स्पष्ट रूप से उभरता दिखता है कि मुझे 1978 के बाद, अर्थात् शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद सभी कुछ सहजता से प्राप्त होता गया है। कुछ पाने के लिये मुझे कुछ छोड़ना नहीं पड़ा, बहुत भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ी और कुछ छोड़ने के लिये अपने से संघर्ष नहीं करना पड़ा। सहज ही मिला भी और सहजता से सब छूटा भी। यह मेरे गुरु का कितना बड़ा आशीर्वाद है!

उदाहरण के लिये, मेरा पूर्ण संन्यास ही लीजिये। मैं संन्यासी से कब स्वामी बन गया, मुझे पता ही नहीं चला। स्वामीजी ने 2008 में मुझे दो बार 'स्वामी आत्माभिषेक' कह कर सम्बोधित किया था, बस यही मेरी दीक्षा हो गई।

इसी तरह मेरे घर छोड़ने की कोई तिथि नहीं है, घर छोड़ा भी नहीं है, बल्कि छूटता जा रहा है। कुछ भी छोड़ना नहीं पड़ रहा है। सब कुछ सहज रूप से घटित होता जा रहा है। पत्नी सहित मेरे घर के सदस्य भी मेरे बिना रहने के अभ्यस्त होते जा रहे हैं। जब मैं घर पर रहता था, उन दिनों भी मैं अधिकतर घर से बाहर ही रहा करता था। अन्तर केवल यही हुआ है कि अब एक साथ लम्बे समय तक आश्रम में रहता हूँ। मुझे कहीं कुछ विशेष प्रयास करना पड़ा हो, ऐसा नहीं लगता है। मेरे स्वामीजी ने मेरी सारी व्यवस्था स्वयं सम्हाल ली है।

स्वामीजी ही नहीं, श्री स्वामीजी भी मेरी व्यवस्था करके गये हैं। महासमाधि से दो माह पूर्व श्री स्वामीजी ने मेरे बारे में स्वामीजी से कहा था, 'अब आत्माभिषेक को मुंगेर को अपना हेड क्वार्टर बना लेना चाहिये।' कितना सहज और सरल निर्देश है। उन्होंने जो निर्देश दिया, वही स्वयमेव घटित हो रहा है।

उन्होंने कहीं कुछ छोड़ने को नहीं कहा। जो और जिस तरह छूटना चाहिये, छूटता जा रहा है। संन्यास और वैराग्य शनैः-शनैः परिपक्व होते जा रहे हैं।

सबसे बड़ी बात हुई है कि मुझमें अपने स्वामीजी के प्रति भक्ति भाव और समर्पण गहन होता जा रहा है। और यह भी सहजता से ही हो रहा है। पुत्र भाव कहीं पीछे छूट गया है या वह भक्त के भाव में घुलमिल गया है। साख्य भाव भी भक्त भाव में समा गया है। इन तीनों भावों में कोई अन्तर नहीं रह गया है। इस सब के पीछे पूर्णरूपेण स्वामीजी हैं। 2010 में उन्होंने ही तो कहा था, 'सब कुछ गुरु पर छोड़ दीजिये।' इतना बड़ा और व्यापक आश्वासन पाने के बाद भला मैं किसी बात की चिन्ता क्यों करूँ? मैं अपने जीवन से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट हूँ। स्वामीजी ने इतनी कृपा और प्यार मुझ पर लुटाया है कि मेरी सारी कामनायें, सारी इच्छायें कहीं विलीन हो गयी हैं। यहाँ भी मुझे इनका त्याग नहीं करना पड़ा है। सहज रूप से वे सब मुझ से दूर चली गयी हैं। कितना आनन्द है!

एक प्रार्थना है, जिसे मैं प्रतिदिन गुरु मन्त्र के जप के बाद दोहराता हूँ –



श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि।
बरनौं रघुवर विमल जस, जो दायक फल चारि ॥
बुद्धिहीन तनु जानिकै, सुमिरौं पवन कुमार।
बल बुद्धि विद्या देहु मोंहि, हरहु कलेश विकार ॥
पवन तनय, संकट हरण, मंगल मूरति रूप।
राम लखन सीता सहित, हृदय बसहु सुरभूप ॥
सिया वर रामचन्द्र शंकर हरि ॐ!
श्री रामाय, रामचन्द्राय, राम भद्राय नमः।
श्री कृष्णाय, गोविन्दाय, माधवाय नमः।
हे शिव-शम्भू! हे भोलेनाथ!
हे दया निधान! हे करुणा निधान!
हे सर्वशक्तिमान्! हे परम पिता परमेश्वर।
तेरी जय हो! तेरी जय हो! तेरी जय हो!
तेरे चरणों के प्रताप से गुरु चरणों में
व तेरे चरणों में जो प्रीत जगी है
हे परम पिता ऐसी सद्बुद्धि देना कि वह बनी रहे!
दिनों-दिन प्रगाढ़तर होती रहे!
और गुरु सेवा करते हुए,
गुरु चरणों में ही मेरी अन्तिम श्वास निकले !!

मुझे विश्वास है कि मेरी यह प्रार्थना अवश्य पूरी होगी। इसके आगे या इससे अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिये। समाधि नहीं, मोक्ष नहीं, आत्म-साक्षात्कार नहीं, भगवत् दर्शन की भी इच्छा नहीं है। मेरे स्वामीजी मेरी झोली में जो भी डाल देंगे, मुझे स्वीकार्य होगा। उन्हें पता है कि मेरी आवश्यकता क्या है। और वे उसकी व्यवस्था करेंगे ही।

कुछ अपने बारे में – एक व्यक्ति के रूप में

मेरा जन्म 2 अक्टूबर 1936 को गाँव अंगौथा, जिला मैंनपुरी (उ.प्र.) में हुआ था। मेरे पिता आर्यवीर सिंह चौहान और माता विटान कुँअरि थीं। मुझे नाम मिला था विष्णुदेव सिंह चौहान। गाँव में शिक्षा आरम्भ हुई और कुल पाँच नगरों तथा आठ विद्यालयों/महाविद्यालयों में पढ़ाई की। भारत सरकार के दो प्रतिष्ठानों और अन्त में भारत सरकार के खान सुरक्षा महानिदेशालय में अपनी सेवायें दीं। मुझे लगता है, इन सबने अर्थात् इतने विद्यालयों में इतने नगरों में पढ़ने और तीन संस्थानों में सेवारत रहने से मुझ में आत्मविश्वास पैदा करने में बड़ी भूमिका निभायी है। मुझे अपने जीवन से जुड़े सभी निर्णय स्वयं ही लेने पड़े। दूसरे शब्दों में कहूँ तो मैं जीवनभर प्रारब्ध से प्रेरित रहा। मैं बहुत सोच-समझकर या योजना बनाकर अपने जीवन को नहीं चला पाया। इसका परिणाम भी भुगता, किन्तु मुझे लगा मैं घाटे में नहीं रहा। कुल मिलाकर मैं अपने सांसारिक जीवन से बहुत सन्तुष्ट रहा हूँ।

1962 में विमलेश से विवाह हुआ। तीन संताने हुईं – नीता, शैलेष और नीना। मेरे एक बड़े भाई और बहन थे, दोनों ही अब शरीर में नहीं हैं। मेरी दीदी शक्तिपात परम्परा के प्रसिद्ध सन्त स्वामी विष्णुतीर्थ के उत्तराधिकारी और शिष्य स्वामी शिवोमतीर्थ की शिष्या रही हैं। मेरे एक छोटे भाई भी हैं, जो सी.आर.पी.एफ. से उप महानिरीक्षक पद से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

यह निष्पक्ष राय है कि मुझमें सहज आत्मविश्वास है, यद्यपि मैं कभी-कभी घोर संकटों से भी गुजरा हूँ। परमात्मा की कृपा परोक्ष रूप से मुझ पर सदैव रही है। मैं आरम्भ से ही स्वास्थ्य के प्रति कुछ अधिक ही सचेत रहा हूँ। मुझमें एक गुण विशेष है, और वह है निष्ठा। मुझे चालबाजी, प्रपंच से चिढ़ है। संभवत: इसी कारण मुझे जीवन में मित्र नहीं मिले। साधु-संन्यासी भी मिले, किन्तु मुझे उनकी कथनी और करनी में अन्तर दिख जाता और मैं वहाँ से भाग खड़ा होता।



पहली बार जीवन में मुझे मेरी सोच के आधार पर, विश्वास और समर्पण करने लायक व्यक्तित्व मिला श्री स्वामीजी के रूप में और मेरा पूरा जीवन बदल गया। मैं कहाँ से कहाँ पहुँच गया! मैं क्या था, क्या बन गया! जीवन धन्य हो गया।

मेरे स्वामीजी को पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रिय हैं। उनके बारे में लिख दूँ कि उनके पिता अजमेर के राजा थे। उनके नाना दिल्ली के राजा थे और उनके कोई पुत्र नहीं था, इस कारण उनके नाना ने पृथ्वीराज को गोद लेकर दिल्ली का राजा बना दिया। चौहान वंश बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा था। इतिहास से जो जानकारी मिली है, उसके अनुसार पृथ्वीराज, चौहान वंश परम्परा में 74वीं पीढ़ी में हुए थे। बाद में उनके पुत्रों ने कई क्षेत्रों में राज्य स्थापित किये, जिनमें से एक मैनपुरी राज्य भी था और मैनपुरी के अन्तिम राजा रिश्ते में मेरे भाई लगते थे। इस आधार पर मैं 104 वीं पीढ़ी में हूँ और पृथ्वीराज से गणना करें तो 30वीं पीढ़ी में हूँ।

मेरी दृष्टि में निष्ठा मानवीय व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है, गुण है। निष्ठवान व्यक्ति के पारिवारिक, सामाजिक, व्यावसायिक और आध्यात्मिक जीवन में सामंजस्य और पूर्णता होती है। मेरा ऐसा मानना है, या कहूँ कि यह मेरा अनुभव रहा है कि निष्ठा सारे सद्‌गुणों का आधार है। निष्ठा है तो आपमें कोई दुर्गुण पनप नहीं सकता; आप झूठ नहीं बोल सकते, चोरी नहीं

कर सकते, रिश्वत नहीं ले सकते, आदि। निष्ठा आत्मबल को भी बढ़ाती है। आध्यात्मिक मार्ग पर तो निष्ठा और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। गुरु पर जितनी गहरी निष्ठा, उतना गहरा विश्वास और जितना गहरा विश्वास, उतनी ही गुरु कृपा की पात्रता।

मुझमें कुछ कमियाँ भी हैं। मैं सहज रूप से लोगों पर विश्वास कर लेता हूँ, बहुत लोगों ने इसका लाभ उठाया है और मुझे परेशानी में डाला है। मैं आम तौर से डरता नहीं हूँ। इस कारण भी कई बार मुश्किलों में पड़ा हूँ, किन्तु दैवी कृपा के कारण मुझे मुँह की कम ही खानी पड़ी है। कोई अदृश्य शक्ति सदैव मेरी रक्षा करती रही है। मैं संवेदनशील हूँ। थोड़ी सी भाव पूर्ण बात या स्थिति हृदय को द्रवित कर देती है और आँसू बहने लगते हैं। बहते ही रहते हैं। कहते हैं यह पुरुषोचित व्यवहार नहीं है। पर मैं कुछ नहीं कर सकता। मुझे नीचे रहना, नीचे बैठना अच्छा लगता है, विशेषकर स्वामीजी के चरणों में बैठना, उन्हें स्पर्श करना, उन्हें चूमना, मेरी एक बड़ी कमजोरी है।

मुझमें एक बड़ी कमी है कि मैंने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, क्योंकि लगता है ज्ञान मेरा क्षेत्र नहीं है। वहाँ मेरी पैठ ही नहीं है। मैं क्या करूँ? मैं ज्ञान विहीन हूँ। मैं कला विहीन भी हूँ। मुझे न हारमोनियम बजाना आता है, न मृदंग-मंजीरा बजाना आता है। और भी कोई कला नहीं आती है।

मेरा हृदय पक्ष प्रबल है और उसी के कारण निष्ठा की भावना भी प्रबल है। इसके कारण आम तौर से या तो मैं कहीं सटता नहीं, और यदि किसी को पकड़ लेता हूँ तो छोड़ता नहीं हूँ। इस कारण मैं कई बार विकट परिस्थितियों में पड़ा हूँ। मेरी जान पर भी बन आयी, परन्तु मैंने साथ नहीं छोड़ा। ऐसे अवसरों पर कोई अदृश्य शक्ति सदैव मेरे साथ खड़ी दिखायी दी है। और मैं उस गंभीर स्थिति से बच निकलता हूँ। इस प्रकार जीवन चलता जा रहा है।

स्वामी निरंजनानन्द का इस धरा पर अवतरण – एक अद्भुत दिव्य घटना

स्वामी निरंजन का जन्म श्री स्वामीजी के संकल्प और माँ गंगा के आशीर्वाद के फलस्वरूप 14 फरवरी 1960 को राजनाँदगाँव, छत्तीसगढ़ में हुआ था। उनकी माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ श्री स्वामीजी की प्रथम शिष्या, स्वामी धर्मशक्ति को और पिता बन कर धन्य हुए स्वामी सत्यव्रतानन्द, जो श्री स्वामीजी के गुरुभाई और घनिष्ठ मित्र थे। निश्चय ही इन दोनों ने पूर्व जन्मों में कठिन तपस्याएँ की होंगी, जिनके फलस्वरूप यह गौरव इस जन्म में इन्हें मिला है।



श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन के जन्म के पूर्व और पश्चात् भी पूज्य अम्माजी को लिखे पत्रों में स्पष्ट संकेत दिया था कि यह बालक साधारण नहीं है, प्रकाश का अवतरण है, सब कुछ सीख कर आया है। श्री स्वामीजी इन्हें सदा से अपना 'मानस पुत्र' कहते आये हैं।

हमारी भारतीय आध्यात्मिक परम्परा अति समृद्ध रही है और आज भी है। एक से बढ़कर एक महान् विभूतियों ने जन्म लेकर इस धरा को पवित्र किया है और जन-मानस को दिशा दी है। किन्तु इस युग में, शायद ही कोई दूसरा उदाहरण मिलेगा जिसमें किसी सिद्ध-संत-महात्मा ने अपने संकल्प से किसी सिद्ध-प्रबुद्ध आत्मा का आवाहन कर उसे अपना मानस-पुत्र और उत्तराधिकारी बनाया हो। इतना ही नहीं, जन्म के बाद वह शुद्ध-प्रबुद्ध मानस-पुत्र अपने गुरु और पिता के द्वारा पूर्व में की गई घोषणाओं पर खरा ही नहीं

उतरा, बल्कि उससे भी अधिक चमत्कारी व्यक्तित्व का स्वामी बन गया है। अभी तो वे केवल 53 वर्ष के हुए हैं, मेरा विश्वास है और प्रार्थना भी कि वे कृष्ण के समान 125 वर्ष तक इस धरा को पवित्र करते रहेंगे। उनका जितना भी सान्निध्य हमें मिला या मिल रहा है उसके लिए हम सब केवल अपने भाग्य को ही सराह सकते हैं।

एक बार रिखिया में सत्संग के दौरान श्री स्वामीजी ने कहा था – 'स्वामी निरंजन मुझसे केवल लम्बाई में बड़े नहीं हैं, बल्कि मुझसे हर मायने में बड़े हैं।' एक सिद्ध सन्त ने अपने शिष्य के बारे में कितनी अद्भुत बात कह दी है! कोई गुरु शिष्य की ऐसे भी प्रशंसा करता है भला?

एक अन्य सत्संग के दौरान श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन के शिष्यत्व के गुणों की चर्चा करते हुए कहा था – 'निरंजन ने मुझे आज तक किसी भी विषय पर कभी कोई सलाह नहीं दी। मेरे सामने वह जब भी आते हैं, केवल आदेश लेने आते हैं। और मेरे प्रत्येक आदेश का पालन भी करते रहे हैं।'

एक बार रिखिया में किसी प्रसंग में श्री स्वामीजी ने कहा था – 'मुझे एक ही निरंजन मिला, यदि मुझे निरंजन जैसे दस शिष्य मिल जाते तो मैं सारी दुनिया को उलट-पलट कर सही रास्ते पर ले आता।' श्री स्वामीजी के कथन का मूल अर्थ यही है कि स्वामी निरंजन अद्वितीय प्रतिभा के धनी हैं।

जहाँ तक मेरी सोच और समझ की सामर्थ्य है, मैं स्वामी निरंजन को बहुत अरसे से परमेश्वर के रूप में देखता आया हूँ। यह समझ हर आगे आने वाले दिन में पहले से अधिक गहन होती जा रही है।

स्वामी निरंजन ही नहीं, श्री स्वामीजी भी परमेश्वर के अंशावतार हैं। परमेश्वर को छोड़कर किसमें इतनी सामर्थ्य हो सकती है कि सिद्ध सन्त की आत्मा का आवाहन कर शरीर धारण करने की व्यवस्था कर सके। यह क्या विशुद्ध ईश्वरीय कार्य नहीं है? इतना ही नहीं, श्री स्वामीजी ने तो एक और ऐसा कीर्तिमान अपने नाम कर लिया है, जिसका उदाहरण मिलना कठिन है। वह कीर्तिमान है, स्वेच्छा से ध्यान की अवस्था में प्रवेश कर प्राणों का उत्सर्ग और शिव तत्त्व में विलीनीकरण।

यह सर्वविदित है कि परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी भगवान् शिव के अंशावतार थे। इस तरह हम भक्तों के जीवन में यह अनूठा संयोग उपस्थित हुआ है कि हमारी परम्परा के तीनों गुरु परमेश्वर के अंशावतार हैं। इस सन्दर्भ में एक तथ्य को यहाँ उद्धृत करना चाहूँगा कि 18 मई 2008 को अन्तरिक्ष

में खोजे गये तीन नये सितारों का एक साथ नामकरण इन्टरनेशनल स्टार रजिस्ट्री द्वारा हमारे तीनों गुरुओं के नाम किया गया है। एक बात उल्लेखनीय है कि उस दिन, अर्थात् 18-05-2008 को श्री स्वामीजी भी शरीर में विद्यमान थे। कहने का तात्पर्य यह है कि अन्तरिक्ष जगत् का यह अभूतपूर्व सम्मान दो जीवित हस्तियों को मिला था।

यहाँ मैं डॉक्टर राम जी सिंह, तत्कालीन उप-कुलपति, जैन विश्व भारती लाड़नू, राजस्थान के शब्दों को उद्धृत करना चाहूँगा – "1994 में स्वामी निरंजन से मिलने के लिए मैं गंगा दर्शन आया हुआ था। जब मैं उनके पास बैठा था, उसी समय श्री स्वामीजी का फोन आ गया। स्वामी निरंजन ने श्री स्वामीजी से बातें कीं और उन्हें बताया कि मैं उनके पास बैठा हूँ। श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजन को मुझे फोन देने के लिए कहा। अभिवादन के बाद श्री स्वामीजी ने मुझसे कहा – तुम्हें पता है स्वामी निरंजन कौन हैं? भीष्म के बाद दूसरे गंगापुत्र हैं। इनका जन्म माँ गंगा के आशीर्वाद से हुआ है। यह मेरा मानस पुत्र है, जिसका जन्म ईश्वरीय कार्य हेतु, मेरे संकल्प से हुआ है। हर प्रकार से इसकी मदद करना।"

'मेरे आराध्य' में स्वामी धर्मशक्ति जी ने लिखा है कि एक प्रसंग में स्वयं श्री स्वामीजी ने हँसते हुए कहा था – " मैंने निरंजन को बुलाया है और फिर स्वामी निरंजन मुझे बुलायेगा।"

यह बुलाने की प्रक्रिया आरम्भ भी हो चुकी है। स्वामी निरंजन ने वर्ष 2012 के लक्ष्मी नारायण यज्ञ के दौरान घोषणा की थी कि स्वामी शिवानन्द जी का पुनर्जन्म हो चुका है और जहाँ तक श्री स्वामीजी के बुलाने की बात है, जनवरी 2012 के आरम्भ की गयी नई पत्रिका – 'सत्य का आवाहन' – को स्वामी निरंजन द्वारा श्री स्वामीजी के पुनर्जन्म की व्यवस्था का ही अंग माना जाना चाहिए। हममें से कुछ तो अवश्य ही ऐसे भाग्यशाली होंगे जो इन दो अवतारी महापुरुषों का पुनर्अवतरण देख सकेंगे।

स्वामीजी की एक अप्रतिम फोटो

पिछले वर्ष कुछ ऐसा घटित हुआ कि मुझे लगा मेरे पास स्वामीजी की फोटो खींचने के लिए एक कैमरा होना चाहिए। मैंने इच्छा की और 21 दिसम्बर 2012 को एक छोटा सा कैमरा मेरे हाथों में आ गया। अगले दिन 'योग पूर्णिमा' में सहभागिता के लिए रिखिया पहुँच गये। 23 दिसम्बर की शाम को स्वामीजी कार्यक्रम स्थल, पतंजलि आश्रम जाने के लिए ऑफिस के पास



आये तो मैं तुरंत उनके समीप पहुँच गया। मैंने अवसर का लाभ उठाते हुए स्वामीजी से कहा, 'यह नया कैमरा मुझे मिला है। मुझे इसके बारे में अभी कुछ पता नहीं है। इसे पहले आप अपने हाथ में पकड़ लीजिए।' स्वामीजी ने उसे कुछ समय तक पकड़े रखा। फिर मैंने उनसे कैमरा लिया और कहा, 'इससे पहली फोटो आपकी खींचनी है, तैयार हो जाइये।' वे फोटो खिंचवाने के लिए तैयार हो गये। मैंने फोटो ली।

जब बाद में स्क्रीन को बड़ा करके देखा तो पाया कि स्वामीजी की फोटो बहुत सुन्दर आयी है। स्वामीजी का सौन्दर्य इस फोटो में देखते ही बनता है। मुझे ऐसा लगता है कि स्वामीजी ने अपनी दिव्यता का बड़ा अंश उस क्षण अपने शरीर में उतार दिया हो, जिसके कारण उक्त फोटो में उनका अतुलनीय सौंदर्य कैमरे में कैद हो गया।

'मेरे प्राणाधार' के लिए आशीर्वाद

3 फरवरी 2013, रविवार को स्वामीजी का सत्संग प्रात: 9 बजे होना तय था। मैंने स्वामीजी के लिये एक छोटा-सा पत्र लिखा। मैं बहुधा ऐसा करता हूँ, क्योंकि स्वामीजी के सामने पहुँच कर उनसे अपनी बात ठीक से नहीं कह पाता हूँ। इस स्थिति से बचने के लिए मैं पत्र लिख लेता हूँ। आज मैं 8 बजे ही कार पार्क पहुँच गया और वहाँ से सीढ़ियों की बगल में नयी-नयी ढलान पर तेजी

से चढ़ कर ऊपर पहुँचा तो एक सुखद आश्चर्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। 'मेरे प्राणाधार' स्वामीजी को मैंने ठीक सामने और वह भी अकेले खड़ा पाया। उन्हें इस तरह पाना अकल्पनीय है। ऐसा लगा मानो वे मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे हों और उन्होंने ही मुझे इतनी जल्दी बुलावा भेजा था। मैंने बिना एक क्षण गँवाये साष्टांग मुद्रा में अपने ही तरीके से उनके चरण स्पर्श किए, प्यार से उठ कर खड़ा हुआ और उन्हें वह पत्र सौंप दिया। उन्होंने तुरंत पढ़ डाला। पत्र में मैंने उनसे अनुरोध किया था कि 'मेरे प्राणाधार' में आशीर्वाद के रूप में कुछ अवश्य लिखिए।

मैंने उनसे कहा, 'मेरा यह मानना है कि 'मेरे प्राणाधार' मेरे जीवन की पूर्णाहुति है और पूर्णाहुति के बाद तो जाना ही होता है।' इस पर मेरे स्वामीजी कहते हैं, 'हाँ, निश्चित ही यह पूर्णाहुति है, लेकिन केवल इस जीवन की।' उनके कथन का अर्थ ठीक से समझ नहीं सका। मैंने फिर से कहा, 'मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि मुझे जीवन का एक्सटेंशन इसलिए मिला है कि मैं 'मेरे प्राणाधार' लिख सकूँ। अब मुझे जाना ही होगा।' इस पर स्वामीजी कहते हैं, 'अभी आप को कहीं नहीं जाना है। हाँ, घर जाकर रहना चाहें तो बात दूसरी है।' मैंने कहा, घर जाने का अब प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने फिर कहा, 'हाँ, यह आपकी पूर्णाहुति है, लेकिन केवल इस जीवन की।'

इसका यही अर्थ लगा पाया कि इस शरीर में रहते हुए मैं कई जीवन एक के बाद एक जी रहा हूँ। याद आया कि मेरा मूल जीवन 1996 से ही समाप्त हो चुका है। उसके बाद जो जीया है, वह इस शरीर में मेरा दूसरा जीवन है। इस दूसरे जीवन की पूर्णाहुति मेरे प्राणाधार छपने के बाद ही हो जायेगी और तब आरम्भ होगा इसी शरीर में मेरा तीसरा जीवन, जिस पर मेरे स्वामीजी का पूर्ण स्वामित्व होगा। मेरे समस्त कर्म तब तक क्षय हो चुके होंगे। और तब स्वामीजी मुझे नये सिरे से गढ़ेंगे। शायद पूरी तरह अपने रंग में रंगते हुए। तब दो शरीर अवश्य होंगे, पर दोनों शरीरों में प्राण ही नहीं, आत्मा भी एक ही स्पन्दित होगी।

यह चिन्तन करते-करते मुझे भगवान श्री कृष्ण की लीलाओं की याद हो आई। एक बहुत प्रसिद्ध लीला है, गोपियों के चीरहरण की। मेरे सामने भी तो कलियुग के कृष्ण ही खड़े हैं। होली की याद आने पर लगा कि मेरा भी प्रतिदिन चीरहरण होता जा रहा है। स्वामीजी योजनाबद्ध विधि से एक-एक कर सभी आवरण ही तो हटा रहे हैं। वे निश्चित रूप से ऐसी स्थिति निर्मित करने में लगे हैं जहाँ भगवान और भक्त, प्रेमी और प्रेमास्पद के बीच कहीं कोई भेद न रह जाय। जिस क्षण ऐसा हो जायेगा, वही समस्त जीवन की पूर्णाहुति

होगी। वे निश्चित रूप से इसी एकसूत्री योजना पर कार्य करने में लगे हैं। वैसे उनके बारे में जब भी मैं कोई आकलन करता हूँ, अगले ही क्षण वे उसे ध्वस्त करने से नहीं चूकते हैं। वह कब, क्या और कैसे करेंगे, कोई नहीं जानता। मैं कब तक उनकी लीलाओं का पात्र बना रहूँगा? वह कब तक मेरे साथ इस आत्मीयता के साथ खेल रचाते रहेंगे? इन प्रश्नों का उत्तर केवल और केवल उनके पास है, किन्तु वे बताने कब लगे। अगर बताने लगे तो लीला का रहस्य खुल जायेगा। जब स्वयं विष्णु अपने सामने प्रकट हुए ज्योति स्तम्भ का ओर-छोर नहीं पा सके तो हम किस खेत की मूली हैं!

वे प्राय: अपने कृत्यों या कथनों के माध्यम से कुछ ऐसा कर बैठते हैं जो पूर्णत: अप्रत्याशित होता है। मैं मूढ़ उनके पिछले कथन को ही उनकी पराकाष्ठा मान बैठा हूँ, क्योंकि बुद्धि उससे आगे जा ही नहीं पाती, जब अगली घटना घटित होती है तब लगता है कि यह निश्चित रूप से पराकाष्ठा है और उनका यह खेल चलता रहता है। उन्हें समझने या उनके कृत्यों को समझने का प्रयास करना कुछ ऐसा ही लगता है जैसे हम अंतरिक्ष को पकड़ने का प्रयास कर रहे हों। अंतरिक्ष भला किसी की पकड़ में आया है! ठीक उसी तरह से मेरे स्वामीजी पास दिखते हुए भी मेरी समझ से दूर ही खड़े दिखायी देते हैं, *'तुम डाल-डाल हम पात-पात'* वाली कहावत चरितार्थ होती है। मैं बार-बार यह भूल करता रहता हूँ और वे हर बार कुछ नये गुल खिलाते रहते हैं, जो पूरी तरह मेरी समझ से परे होता है।

स्वामीजी की पंचाग्नि साधना की पूर्णाहुति

14 जनवरी 2013 को स्वामीजी ने अखाड़ा परिसर में पूर्व की ओर, श्रीपीठ के दक्षिण में स्वामी सत्यसंगानंद जी और हम सबकी उपस्थिति में पंचाग्नि साधना आरंभ की थी। आज 11 फरवरी को स्वामी सत्यसंगानंद और हम सबकी उपस्थिति में स्वामीजी की साधना की पूर्णाहुति का कार्यक्रम विधिवत् सम्पन्न हुआ।

स्वामीजी पूरे शरीर में भस्म लपेटे हुए, रुद्राक्ष की मालाओं से अलंकृत, साक्षात् शिव ही लग रहे थे। उन्हें देख मुझे लगा कि वे आन्तरिक रूप से अति आह्लादित हैं। उस दिन उनकी चाल में जो मस्ती झलक रही थी, वैसी मस्ती मैंने संभवत: पहले कभी नहीं देखी है।

मुझे लगा कि स्वामीजी को कोई साधना करने की आवश्यकता ही नहीं है। वे सभी कुछ पूर्व जीवन में ही कर चुके हैं। ये साधनाएँ वे हम भक्तों और शिष्यों को प्रेरणा देने के लिये ही कर रहे हैं। ऐसा ही कुछ मैं श्री स्वामीजी के



बारे में भी सोचता हूँ। उन्हें भी कोई साधना अभीप्सित नहीं थी, उन्होंने भी जो किया, वह विश्वभर के साधकों को प्रेरणा देने के उद्देश्य से ही किया था, क्योंकि लोग सब भूल चुके थे। इन महापुरुषों का अवतरण परमात्मा की इच्छा से, परमात्मा के किसी विशेष कार्य को संपादित करने के लिए ही होता है। इन्हें स्वयं कुछ करना नहीं होता है।

पूज्य अम्माजी की महासमाधि

12 फरवरी 2013 को वसंतोत्सव और बिहार योग विद्यालय की स्थापना के स्वर्ण जयंती समारोह का शुभारंभ हुआ। प्रात: सत्संग श्रृंखला आरम्भ हुई। दोपहर के कार्यक्रम के दौरान पूज्य स्वामीजी ने बोलना आरंभ किया। वे भूमिका बनाते से लगे। मुझे आशंका हुई कि स्वामीजी पूज्य अम्माजी के बारे में सूचना देने जा रहे हैं। और कुछ क्षणों बाद उन्होंने पूज्य अम्माजी की महासमाधि की घोषणा की। अचानक लगा कि मेरे हृदय का एक कोना आज खाली हो गया है। उन्होंने बताया कि पूज्य अम्माजी ने ॐ उच्चारण के साथ ठीक 12 बजे अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है। वसंतोत्सव और स्वर्णजयंती वर्ष के शुभारंभ को पूज्य अम्माजी ने आशीर्वाद देते हुए महासमाधि में अपने को विलीन किया है। तत्पश्चात् पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जबलपुर से पधारे स्वामी गिरीशानंद जी ने श्रीमद्भागवत् पर अपना उद्बोधन दिया।

शाम को अखाड़ा परिसर में स्थित श्रीपीठ में हमें पूज्य अम्माजी के अंतिम दर्शन का सौभाग्य मिला। अगले दिन, अर्थात् 13 फरवरी को अम्माजी को विधिवत् भूसमाधि दी गयी।

अपने को जब अकेला पाया तो अम्माजी की स्मृतियों में खो गया। वैसे तो वे सारे जग की अम्माजी थीं, सभी उनके स्नेहभाजन बने, सभी उनके दर्शनों को लालायित रहते थे, किन्तु न जाने क्यों, मुझे लगता था कि वे मुझ पर कुछ अधिक ही मेहरबान थीं। मई 2009 में स्वामीजी के कृत्यों के कारण मैं अनायास अम्माजी के अधिक निकट आ गया, मैं अब उनका पोता जो बन चुका था। यह सर्वविदित है कि पोते या नाती का दादी या नानी से सम्बन्ध बहुत प्रगाढ़ होता है। यह भी एक संयोग था कि मुझे व्यक्तिगत रूप से अपनी दादी और नानी, दोनों के ही दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला था। अतएव अम्माजी को दादी का सम्बोधन कर मेरी एक अधूरी साध पूरी हो गयी। 76-77 वर्ष का मैं उनसे वैसे ही बात करता था जैसे कोई नटखट पोता करता है। और वे बहुत प्रसन्न हो जाती थीं।

अम्माजी हमें श्री स्वामीजी और स्वामीजी के जीवन से जुड़ी घटनाओं के बारे में बताती ही रहती थीं। उनके पास स्मृतियों का अखण्ड भण्डार जो था। मैंने उनकी इस गहन रुचि को परख कर, अलग-अलग समय पर श्री स्वामीजी और स्वामीजी के सुन्दर-सुन्दर फोटो फ्रेम करा कर उन्हें भेंट किये। इस क्रम में स्वामीजी का एक फोटो मैंने उन्हें इसी 20 जनवरी को भेंट करते हुए कहा था, 'इस फोटो में स्वामीजी कितने सुन्दर लग रहे हैं?' पूज्य अम्माजी की टिप्पणी थी, 'हाँ, इस आश्रम में इतना सुन्दर कोई नहीं है।' इस पर मैंने कहा था, 'नहीं! मेरे स्वामीजी संसारभर में सबसे सुन्दर हैं।' इस पर उनके हृदय की प्रतिक्रिया थी, 'नहीं! मेरे स्वामीजी!' इस छोटे-से वाक्य से झलकता है कि जीवन के अंतिम क्षणों तक उनके हृदय में हमेशा उनके गुरु श्री स्वामीजी ही बसे रहे।

बाद में मैंने अपने नये कैमरे से अम्माजी की दो फोटो भी ले ली। मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि इस बीच अम्माजी के स्वास्थ्य में गिरावट आयी है।

कुछ दिनों बाद, अर्थात् 7 फरवरी को मैं फिर अम्माजी के दर्शन के लिए और इस बार उनके आराध्य श्री स्वामीजी के दो दिव्य फोटो लेकर गया था। उन्होंने एक-एक कर उन्हें अपने हाथों से पकड़ा और अपने माथे से लगाया। उनके चेहरे पर हलकी-सी मुस्कुराहट दौड़ गयी। किन्तु मैं उनके चेहरे को देखकर आशंकित हुआ, मुझे स्पष्ट आभास हुआ कि वे अब अपने को समेटने में लगी हैं। और कुछ दिन बाद वे सचमुच अपने आराध्य में लीन हो गयीं।



आज मैं अम्माजी के बारे में चिन्तन करता हूँ तो ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि उन जैसी भाग्यशाली महिला, संभवत: दूसरी कोई नहीं है। स्वामी सत्यव्रतानंद जी के रूप में एक अति धर्मनिष्ठ, सत्य के व्रत को धारण करने वाला पति मिला। स्वामी शिवानंद जी जैसे महावतार सन्त का सान्निध्य मिला, स्वामी सत्यानंद जी जैसे महान् योगी, युगद्रष्टा सन्त की प्रथम शिष्या होने का गौरव मिला और उनकी असीम कृपा की पात्र और सहयोगी होने का सौभाग्य भी मिला। साथ ही स्वामी निरंजनानंद जी जैसी उत्कृष्ट आत्मा को, जिसका आवाहन स्वयं सत्यानंद जी ने किया था, नौ माह तक गर्भ में धारण करने और जन्म देकर उनकी माँ बनने का अद्वितीय गौरव प्राप्त हुआ। मनु-शतरूपा की तरह न जाने कितने जन्मों तक घोर तपस्या की होगी इन दो तपस्वी आत्माओं ने, तब जाकर इन्हें निरंजन जैसा पुत्र मिला।

ऐसा सौभाग्य निश्चित रूप से दुर्लभ है। ऐसे में हम अपने को परम सौभाग्यशाली मानने से कैसे रोक सकते हैं, जिन्हें अम्माजी का सान्निध्य और वात्सल्य भरपूर मिला है। उन्हें हमारी हार्दिक श्रद्धांजलि!

उपसंहार

मेरे इस जीवन का उपसंहार कब और कैसे होगा; होगा भी या नहीं ही होगा? इन सारे प्रश्नों के उत्तर केवल मेरे प्राणाधार स्वामीजी के पास हैं। वे कब और क्या कर बैठेंगे, यह पूर्णरूपेण कल्पनातीत है। उन तक पहुँचने का केवल एक माध्यम है, हृदय। बुद्धि का वहाँ प्रवेश ही नहीं है।

अभी 19-12-2012 के प्रातः की घटना को ही लीजिये। उनके श्रीमुख से निःसृत दो लघु वाक्यों ने क्या नहीं कह दिया। दूसरे शब्दों में कहूँ तो उन्होंने उस दिन सारी दूरियाँ मिटा दीं। उन्होंने उच्चरित किया था – 'यह मेरे हैं और मैं इनका हूँ।' इन शब्दों को सुनकर भला कोई भी अपने होश में बना रहेगा?

घटना कुछ इस प्रकार घटी। मैं पादुका दर्शन से प्रातः गंगादर्शन पहुँचा तो मेन गेट पर सेवारत धर्मविजय से 'हरि ॐ' हुआ। वह पूछ बैठे – 'स्वामीजी के दर्शन हुए?' मैंने कहा – 'वे तो हृदय में रहते ही हैं, उनके प्रत्यक्ष दर्शन हों तो बहुत अच्छा; न हों तो कोई चिन्ता क्यों?' फिर मैंने सूरदास का प्रसिद्ध दोहा दुहरा दिया –

बाँह छुड़ाये जात हौ निबल जानि कै मोहि ।
जब हिरदय तै जाइ हौ, सबल बदौंगो तोहि ॥

हम इसी चर्चा में निमग्न थे, इतने में धर्मविजय कहते हैं – 'वे रहे स्वामीजी।' ऊपर की ओर देखा तो पता चला कि स्वामीजी टीक प्लॉट से निकल कर सड़क पर खड़े हैं। हम दोनों उनकी ओर चल दिये। पास पहुँचते ही धर्मविजय ने चरण स्पर्श किया, तत्पश्चात् मैंने साष्टांग मुद्रा में चरण स्पर्श किये। इसी बीच धर्मविजय मुझसे कहते हैं – 'वह कबीरदास का दोहा सुनाईये न!' मैंने उठते हुए कहा – 'कबीरदास नहीं, सूरदास का।' इस पर उन्होंने कहा – 'हाँ, वहीं सुनाईये न स्वामीजी को।' मैंने कहा – 'मैं स्वामीजी को लिख कर दे चुका हूँ।' अचानक स्वामीजी ने कुछ ऐसा कह दिया, जिसकी सपने में भी कल्पना नहीं की जा सकती। स्वामीजी के श्रीमुख से बिना किसी सन्दर्भ के वे अद्भुत लघु वाक्य उच्चरित हुए। उन्होंने मेरी ओर इशारा करते हुए कहा – 'यह मेरे हैं और मैं इनका हूँ।'

मेरे कानों ने निश्चय ही इतने विलक्षण शब्द आज तक नहीं सुने थे। मैं भावों के हिलोरों में कुछ देर डूबता-उतराता रहा। इस बीच धर्मविजय ने कुछ कहा, मैंने सुना तो, पर समझ नहीं पाया। उत्तर में स्वामीजी ने वही दो लघु

वाक्य दोहरा दिये – 'यह मेरे हैं और मैं इनका हूँ।' मेरे मुँह से उस समय एक भी शब्द नहीं निकला था। निकलता भी कैसे? आज तो स्वामीजी ने मुझको ही अपना घोषित नहीं किया, बल्कि अपने को भी मेरे हवाले कर दिया। यह पूर्णत: कल्पनातीत है। और वह भी बिना किसी प्रसंग के। उन्हें कहना था, कह दिया। सारे प्रश्नों पर हमेशा के लिए विराम लगा दिया। इसको कहते हैं छका-छका कर पिलाना, तृप्त कर देना। इसके बाद भी पीने की इच्छा शेष रह जाये तो अनर्थ हो जायेगा।

आज जो हुआ उस पर चिन्तन चलता रहा। मन में प्रश्न उठा – आखिर स्वामीजी ने यह क्या कह डाला और क्यों? ठीक है, मैं उनका भक्त हूँ, तो इतना भर कह देना क्या यथेष्ट नहीं था, 'यह मेरे हैं।' उनकी ओर से कहा यह वाक्य किसी के लिए भी जीवन की धरोहर बन सकता है, जीवन की उपलब्धि, जीवन की पूर्णता माना जा सकता है। किन्तु आज तो स्वामीजी ने यह भी कह डाला, 'मैं इनका हूँ।' यहाँ तक न तो मन की पहुँच है और न ही हृदय की भावनाओं की। बुद्धि बेचारी जीवनभर झाड़ू लगाती रहती है। यह किसी दैवी उद्‌घोषणा से किसी प्रकार कम नहीं है। अखण्ड आश्वासन।

तृप्त व्यक्ति में जीने की चाह समाप्त हो जाना स्वाभाविक प्रक्रिया ही कही जायेगी। जब तक कुछ करना है, जीवन है। जब करने को कुछ भी शेष न हो तो जीवन का मानो सन्दर्भ ही विलीन हो गया है। फिर याद आया कि मेरा एक कार्य अभी भी शेष है और वह है कि अपने प्राणाधार और प्रियतम के लिये, उनका साथ देने के लिए, उनके साथ समय बिताने के लिए मुझे जीना होगा।

एक कारण यह भी है कि मुझ पर मेरा अधिकार तो न जाने कब से स्वामीजी ने छीन लिया है। 'यह मेरे हैं' कहकर स्वामीजी ने मुझ पर अपना सम्पूर्ण अधिकार ही तो जताया है। अब मेरी क्या मजाल कि मैं उन्हें छोड़कर जाने की सोचूँ भी। सोचता हूँ कि आखिर इस खेल का कभी समापन या उपसंहार भी होगा या यह खेल यों ही चलता रहेगा नियति तक।

यह लिखते-लिखते मुझे 2012 की पादुका दर्शन की एक शाम याद आयी। उस दिन मैंने स्वामीजी से जो कह डाला वह अकल्पनीय है, वह मेरा घोर अभद्रतापूर्ण व्यवहार था। मैंने उनसे अचानक कहा था – 'मेरा आप पर स्वामित्व होने जा रहा है।' सुनकर उन्होंने यह कहते हुए मीठा प्रतिवाद किया था, 'आप मुझे धमका रहे हैं?' मेरा उत्तर था, 'जो होने वाला है, मैं वही कह रहा हूँ।' अब इन घटनाओं को एक साथ रख कर चिन्तन करता हूँ तो लगता है



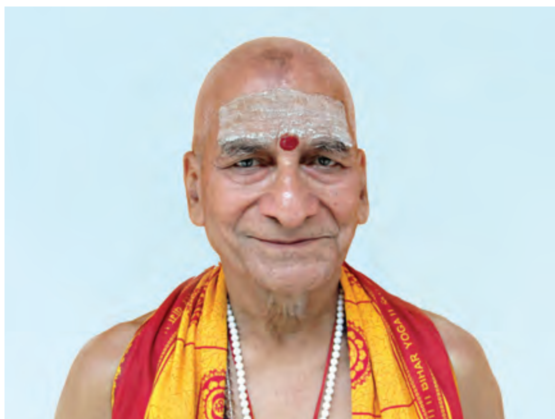
कि उस दिन जो मुझसे कहलवाया था और आज उन्होंने जो स्वयं कहा, दोनों में अन्तर कहाँ है। मुझे उन्होंने पूर्णत: अपने में समाहित कर लिया है। *'जब दोनों मिल एक बरन भये, सुरसरि नाम पड़ो।'* मेरी सारी अपवित्रता, प्रारब्ध और कर्मफल, विकार समाप्त, सुरसरि में समा जो गया हूँ। यही तो वेदों का दर्शन है, सन्तों का चिन्तन है। लोग दर्शन पढ़ें, समझें, सिर खपायें; मैं तो उस दर्शन को ही जी रहा हूँ, समझने की आवश्यकता ही नहीं रह गई है।

जीवन की पूर्णता का कुछ और भी अर्थ हो सकता है? मैं अब सोचना भी नहीं चाहता। भक्त कवियों का लेखन/गायन पढ़ता हूँ या सुनता हूँ तो मुझे उनका प्रत्येक शब्द हृदय में उतरता सा लगता है। विशेषकर मीराबाई के पद पढ़, सुनकर, पद लिखते समय उनकी मन:स्थिति क्या रही होगी, मुझे उसकी एक झलक मिलती है।

20 जनवरी 2013 को चातुर्मासिक सत्र के विद्यार्थियों ने कार्यक्रम प्रस्तुत किये थे। अन्त में बहुचर्चित सूफी गीत – 'छाप तिलक सब छीनी री मोसे नयना मिलायके' गाया तो मेरे आँसू लगातार झरते रहे। उस गीत का एक-एक शब्द मेरे हृदय में उतरता जा रहा था। मैं उन क्षणों में उस गीत को जी रहा था। और यह अनुभव किसी दर्शन या ज्ञान से किसी तरह कम नहीं है।

अपने अनुभव से मैंने यह जाना है कि स्वामीजी के श्रीमुख से कभी एक भी शब्द निरर्थक नहीं निकलता है। वे न कभी किसी की प्रशंसा करते हैं, न निन्दा। वे वस्तुस्थिति या जो भविष्य में होने वाला है उसकी ओर इंगित करते हैं। कहने के समय उनके बहुत से कथन पूरी तरह समझ में नहीं आते, किन्तु कालान्तर में जब कुछ घटित हो जाता है तब याद आता है कि स्वामीजी ने अमुक समय में ऐसा कहा था। यह सिद्धों और परमहंसों का लीला क्षेत्र है, इतना ही हम समझें। इससे अधिक समझने का प्रयास नहीं करना ही श्रेयस्कर है। वे जितना जना दें हमें जान लेना है और शेष, जब समय आयेगा, वे जनायेंगे ही।





पृथ्वीराज चौहान की वंश परम्परा में, तीसवीं पीढ़ी में 2 अक्टूबर 1936 को गाँव अंगौथा, जिला मैंनपुरी (उ.प्र.) में जन्मे विष्णुदेव सिंह चौहान ने अपनी शिक्षा समाप्त कर भारत सरकार के दो प्रतिष्ठानों और अन्त में भारत सरकार के खान सुरक्षा महानिदेशालय में अपनी सेवायें दीं।

नवम्बर 1978 में धनबाद में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय योग सम्मेलन में उन्हें अपने गुरु श्री स्वामी सत्यानंद सरस्वती के प्रथम दर्शन हुए। 1978 से 1994 के आरम्भ तक का समय उन्होंने अपनी आन्तरिक यात्रा की तैयारी में बिताया। 1994 में सेवा निवृत्ति के पश्चात् उन्होंने अपना जीवन गुरु के मिशन के लिए समर्पित करने का निर्णय लिया और मुंगेर आश्रम आए।

19 अप्रैल 1994 को चैत्र नवरात्रि अष्टमी के शुभ दिन स्वामी निरंजनानन्द जी ने उन्हें कर्म संन्यास में दीक्षित किया, नाम दिया 'आत्माभिषेक'। सेवा के रूप में भारत के विभिन्न प्रान्तों में योग प्रशिक्षक का कार्य मिला, जिसे उन्होंने पूरी योग्यता और समर्पण भाव के साथ निभाया।

14 वर्षों तक घर पर रहकर सेवा व्रत का पालन कर लेने के बाद, स्वामीजी ने मार्च 2008 में उन्हें योग सत्रों के संचालन के लिये गंगा दर्शन बुला लिया। वर्तमान में वे मुंगेर में रहकर विभिन्न सत्रों का संचालन करते तथा योग शिविरों के संचालन के लिए सम्पूर्ण भारत में भ्रमण करते हैं।



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

अवतार पुरुष इस धरा पर आते और साधारण मनुष्यों की तरह रहते हैं, हम उन्हें जान नहीं पाते। किन्तु उनकी सुन्दरता का स्पन्दन प्रत्येक हृदय को झंकृत कर देता है। वे विश्व को अपने सौरभ से भर देते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से जीवन में चहुँ ओर सौन्दर्य दिखायी पड़ने लगता है। उनका हर वाक्य, हर कृत्य हजारों-लाखों के जीवन में प्रेरणा का संचार करता है, जीवन में उमंग लाता और सुख-शान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। वे अपने जीवन से हमें पल-पल शिक्षा देते हैं।

'मेरे प्राणाधार' में स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की लीलाओं की झलकियाँ हैं, जिन्होंने अपने गुरु के आवाहन पर मानव शरीर धारण किया और बाल्यावस्था से ही गुरु के चरणों की शरण लेकर अपना सम्पूर्ण जीवन मानवता के हितार्थ समर्पित कर दिया। अध्यात्म के शिखर पर विराजित मेरे लीलाधर की इन लीलाओं में आपको उनकी बालसुलभ कोमलता, सरलता, विनोदशीलता और करुणा के दर्शन होंगे, जो अनायास ही अपने सम्पर्क में आने वाले सभी लोगों का मन मोह लेते हैं।





ISBN :978-93-81620-57-1